GEOGRAPHY

(M.A. IV SEM)

प्रादेशिक भूगोल

प्रादेशिक भूगोल मानव भूगोल की एक प्रमुख शाखा है। इसके अन्तर्गत भौतिक एवं मानवीय समानताओं के आधार पर सम्पूर्ण धरातल का वर्गीकरण करके उनका अध्ययन किया जाता है। 'प्रदेश' से आशय एक ऐसे क्षेत्र से है जो किसी न किसी आधार पर अपने समीपवर्ती क्षेत्रों से अलग हो और विभेदित किया जा सके। प्रादेशिक भूगोल पृथ्वी को या इसके किसी हिस्से को किसी आधार पर प्रदेशों में विभाजित करने और उनका वर्णन करने वाला विज्ञान है। भूगोल के अंतर्गत प्रदेशवादी या प्रादेशिक चिंतनफलक का प्रभुत्व 1930 ई० से 1950 ई० तक रहा। रिचर्ड हार्टशोर्न इसके प्रमुख समर्थक थे और उनकी पुस्तक 'द नेचर ऑफ ज्याग्रफी' इस प्रदेशवादी चिंतन की अभूतपूर्व कृति है।

शेफर नामक भूगोलवेत्ता ने जब इस विचारधारा की आलोचना इसे भूगोल में एक्सेप्शनलिज्म कह कर की और भूगोल को सिद्धांत खोजने वाला विज्ञान बनाने की वकालत की तबसे इस विचारधारा का प्रभाव कम हो गया।

क्षेत्रीय अध्ययन का आशय: किसी भी क्षेत्र में जाकर भौगोलिक पर्यावरण से सम्बन्धित आँकड़ों, सूचनाओं एवं जानकारियों को एकत्र करना, समस्याओं को समझना एवं उनका विश्लेषण करना ही क्षेत्रीय अध्ययन कहलाता है। क्षेत्रीय अध्ययन की आवश्यकता-भूगोल एक क्षेत्रीय विज्ञान है।

नियोजन का अर्थ, परिभाषा, प्रकार, महत्व एवं सिद्धान्त

नियोजन एक नवीन , किन्तु भूगोल विषय की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शाखा है। वस्तुतः नियोजन , आर्थिक विकास , सामाजिक न्याय एवं पर्यावरणीय गुणात्मकता को प्राप्त करने का एक उपयुक्त साधन है। यद्यपि नियोजन का अस्तित्व एक नवीनतम विषय के रूप में है तथापि उसका विषय क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं महत्वपूर्ण है। यही कारण है कि यह एक अग्रणी विषय के रूप में उभरकर सामने आया है। जिसमें मुख्यतः मानव कल्याण को प्राथमिकता दी जाती है। इसके अन्तर्गत मानवीय पर्यावरण के विकास एवं सामाजिक संसाधनों के उपयुक्त प्रयोग पर नवीन विधियों एवं तकनीकों के

क्रियाकलापों को महत्व प्रदान करने के साथ - साथ सामाजिक - आर्थिक असमानताओं , असंतुलन एवं सामाजिक अन्याय के विश्लेषण पर भी प्रकाश डाला जाता है और सामाजिक कल्याण हेतु इन असमानताओं को दूर करने के प्रयास किए जाते हैं। सर्वमान्य मत यह है कि नियोजन को सामाजिक उत्थान से विलग नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह समाज में रहने वाले लोगों के जीवन स्तर के उन्नयन का एक प्रमुख प्रेरणास्त्रोत भी है। इसके निर्णायात्मक सूचकांकों एवं प्रामाणिक भूमिका के कारण वस्तुत : विश्व के प्रायः सभी राष्ट्रों ने सामाजिक - आर्थिक ' उत्थान हेतु नियोजन को एक तकनीक के रूप में अपनाया है (मिश्रा , 1974)। वर्तमान समय में नियोजन वास्तव में एक सार्वभौमिक प्रगति का उद्घोष है। आज के प्रगतिशील युग में , अवाधगति से बढ़ती हुई सामाजिक समस्याओं के निदान का प्रमुख साधन नियोजन है। यही कारण है कि इसे विभिन्न क्षेत्रीय स्तरों पर सहर्ष स्वीकार किया जाता है ताकि सूक्ष्म स्तर पर समाज की छोटी इकाइयों की आकांक्षाओं को सरलतापूर्वक पूर्ण किया जा सके और आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा अक्षुण्य रहे। इसके लिए नियोजक का प्रथम कर्तव्य यह होना चाहिए कि वह जिस क्षेत्र के लिए योजना का निर्माण करे , उसके क्रियान्वयन से पूर्व उस क्षेत्र के भौतिक स्वरूप व अन्य सामाजिक परिस्थितियों का भलीभांति सर्वेक्षण कर ले जो कि वहां के मानवीय पर्यावरणीय अन्तर्सम्बन्धों का परिणाम है (फ्रीमैन , 1958)। चूंकि भूगोल का सम्बन्ध पार्थिव वस्तुओं के संयोजन के साथ - साथ उनके साहचर्यरोगी है। जो कि निश्चित स्थानों को विशिष्टता प्रदान करता तथा जम्म , 1954)। नियोजन प्रक्रिया के विकास में भूगोलविदों का महत्वपूर्ण योगदान है। केवल भूगोलवेत्ता ही हैं , जिनका स्थानिक संगठनों तथा स्थानिक विश्लेषण की विशिष्ट तकनीकों पर स्वामित्व है। साथ ही यह मानव , समाज एवं पर्यावरण के मध्य अंतक्रियाओं में समाहित विभिन्न समस्याओं को सुलझाने की दृष्टि से एक बेहतर स्थिति में है क्योंकि ये स्थानीय विश्लेषणों की विशिष्ट शिक्षण कला से परिचित होते हैं। इनका योगदान वास्तव में न केवल सम्पूर्ण स्थानीय असमानताओं एवं अन्यायों की व्याख्या तथा विवरण में ही सुधारात्मक है बल्कि मानवीय प्रसंगौचित्तता हेतु बदलाव में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

नियोजन की संकल्पना (Concept of Planning) -

नायडू (1984) के अनुसार - नियोजन , मानव जीवन के समाजार्थिक उत्थान की एक रणनीति है जो इच्छित उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में सतत् गतिमान है। ड्रार (1963) के अनुसार - नियोजन वह प्रक्रिया है , जिसके अंतर्गत श्रेष्ठ साधनों द्वारा भविष्य में वांछित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किए जाने

वाले क्रियाकलापों के निर्णयों की श्रृंखला तैयार की जाती है। जबकि फलूदी (1973) के अनुसार नियोजन तार्किक विधियों का एक प्रयोग है जिसके द्वारा उद्देश्यों की पूर्ति एवं जननीति में परिवर्तन तथा भविष्य की ठोस कार्ययोजना प्रस्तुत की जा सकती है। फ्रीडमैन (1964) का विचार है कि प्रथमतः , आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के विषय में चिन्तन की दृष्टि से नियोजन मुख्यतः विकासोन्मुख दिशा में कार्यरत है और सामूहिक निर्णयों के उद्देश्यों से गहराई से सम्बन्धित है तथा नीति एवं कार्यक्रम के निर्धारण एवं क्रियान्वयन में सतर्कतापूर्वक प्रयासरत है। जहां कहीं विभिन्न विचारधाराओं का प्रयोग किया जाता है अनुमानतः ऐसी स्थिति में नियोजन की पूर्ति सम्भावित हो जाती है। पार्क एवं पार्क (1987) के अनुसार - नियोजन के उद्देश्य निम्नांकित हैं

(i) सीमित संसाधनों से अधिकाधिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना ;

(ii) अनावश्यक खर्च को सीमित करना ; तथा

(ii) परिभाषित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु श्रेष्ठ क्रियाकलापों एवं उपार्यों को विकसित करना।

इस प्रकार नियोजन को निम्न रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि यह एक संगठित , तार्किक एवं सतत् प्रयास है , जिसके द्वारा विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ विकल्पों का चयन किया जाता है (शाह , 1972)। वस्तुतः निर्णय निर्माण की यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य इच्छित उद्देश्यों की पूर्ति करना है। यह भविष्य की दिशा में सततोन्मुख एवं मानव कल्याण के प्रति अबाध गति से प्रयत्नशील है।

साधारणत: जब कोई व्यक्ति किसी कार्य को कब करना है ? कैसे करना है ? कहां करना हैं ? और किस रूप में करना है आदि प्रश्नों को विचार करता है तो एक विभिन्न विकल्पों में से किसी एक निर्णय पर पहुचता है उसे ही नियोजन कहते है साधारण शब्दो में भविष्य के कार्यों का वर्तमान मे निर्धारण नियोजन हैं। एम.ई.हर्ले के शब्दों में-'योजना का अर्थ है भविष्य में किए जाने वाले काम के बारे में पहले से निर्धारित करना इसमें उद्देश्यों, नीतियो कार्यक्रमों तथा कार्यविधियेा का उनके विभिन्न विकल्पों में से चयन करना हैं''।

नियोजन के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये हैं जिन्हें हम परिभाषायें कह सकते हैं, उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :-

बिली ईं गोत्ज : नियोजन मलूत: चयन करता है और नियोजन की समस्या उसी समय पैदा होती है जबकि किसी वैकल्पिक कार्य विकल्प की जानकारी हुई हो।

कूण्टज और ओ डोनल – व्यवसायिक नियोजन एक बौद्धिक प्रक्रिया है किसी क्रिया के कारण का सचेत निर्धारण है, निर्णयों को लक्ष्यों तथ्यों तथा पूर्व-विचारित अनुमानों पर आधारित है ।'' एम.ई.हर्ले – ''क्या करना चाहिए इसका पहले से ही निधार्रण करना नियोजन कहलाता है। वैज्ञानिक लक्ष्यों, नीतियों, विधियों तथा कार्यक्रमों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करना ही व्यावसायिक नियोजन कहलाता है।

मेरी कुशिंग नाइल्स – ''नियोजन किसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए सर्वोत्तम कार्यपथ का चुनाव करने एवं विकास करने की जागरूक प्रक्रिया है। यह वह प्रक्रिया है जिस पर भावी प्रबन्ध प्रकार्य निर्भर करता है''।

जार्ज आर. टेरी – ''नियोजन भविष्य में झोंकने की एक विधि है। भावी आवश्यकताओं का रचनात्मक पुनर्निरीक्षण है जिससे कि वर्तमान क्रियाओं को निर्धारित लक्ष्यों के सन्दर्भ में समायोजित किया जा सके।

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि, ''नियोजन प्रबंध का एक आधारभूत कार्य है, जिसके माध्यम से प्रबन्ध द्वारा अपने साधनों को निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार समायोजित करने का प्रयास किया जाता है और लक्ष्य पूर्ति हेतु भविष्य के गर्भ में झॉंककर सर्वोत्तम वैकल्पिक कार्यपथ का चयन किया जाता है जिससे कि निश्चित परिणामों को प्राप्त किया जा सके।''

नियोजन की विशेषताए

नियोजन की परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के आधार पर इसकी निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं –

1. नियोजन प्रबंध का प्राथमिक कार्य है क्योंकि नियोजन प्रबन्ध के अन्य सभी कार्यो जैसे स्टाफिंग, सन्देशवाहन, अभिप्रेरण आदि से पहले किया जाता है।
2. नियोजन का सार तत्व पूर्वानुमान है।
3. नियोजन में ऐक्यता पायी जाती है अर्थात एक समय में किसी कार्य विशेष के सम्बन्ध में एक ही योजना कार्यान्वित की जा सकती है।
4. प्रबंध के प्रत्येक स्तर पर नियोजन पाया जाता है।
5. नियोजन उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन है।

6. नियोजन एक सतत एवं लोचपूर्ण प्रक्रिया है।
7. नियोजन एक मार्गदर्शक का कार्य करती है।
8. नियोजन में प्रत्येक क्रियाओं में पारस्परिक निर्भरता पायी जाती है।
9. नियोजन में संगठनात्मकता का तत्व पाया जाता है।
10. निर्णयन नियोजन का अभिन्न अंग है।
11. नियोजन भावी तथ्यों व आंकड़ों पर आधारित होता है। यह इन क्रियाओं का विश्लेषण एवं वर्गीकरण करता है। इसके साथ ही यह इन क्रियाओं का क्रम निर्धारण करता है।
12. नियोजन लक्ष्यों, नीतियों, नियमों, एवं प्रविधियों को निश्चित करता है, नियोजन प्रबन्धकों की कार्यकुशलता का आधार है।

नियोजन की प्रकृति

नियोजन की निरन्तरता –

नियोजन की आवश्यकता व्यवसाय की स्थापना के पूर्व से लेकर, व्यवसाय के संचालन में हर समय बनी रहती है। व्यवसाय के संचालन में हर समय किसी न किसी विषय पर निर्णय लिया जाता है जो नियोजन पर ही आधारित होते हैं। भविष्य का पूर्वानुमान लगाने के साथ साथ वर्तमान योजनाओं में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने पड़ते हैं । एक योजना से दूसरी योजना, दूसरी योजना से तीसरी योजना, तीसरी योजना से चौथी योजना, चौथी योजना से पांचवीं योजना, इस प्रकार नियोजन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

नियोजन की प्राथमिकता –

नियोजन सभी प्रबन्धकीय कार्यों में प्राथमिक स्थान रखता है। प्रबन्धकीय कार्यों में इसका प्रथम स्थान है। पूर्वानुमान की नींव पर नियोजन को आधार बनाया जाता है।इस नियोजन रूपी आधार पर संगठन, स्टाफिंग, अभिप्रेरण एवं नियंत्रण के स्तम्भ खड़े किये जाते हैं। इन स्तम्भों पर ही प्रबंध आधारित होता है। प्रबंध के सभी कार्य नियोजन के पश्चात ही आते हैं तथा इन सभी कार्यों का कुशल संचालन नियोजन पर ही आधारित होता है।

नियोजन की सर्वव्यापकता –

नियोजन की प्रकृति सर्वव्यापक होती है यह मानव जीवन के हर पहलू से सम्बन्धित होने के साथ साथ संगठन के प्रत्येक स्तर पर और समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पाया जाता है।संगठन चाहे व्यावसायिक हो या गैर व्यावसायिक (धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, या सामाजिक) छोटे हों या बड़े, सभी में लक्ष्य व उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नियोजन की आवश्यकता पड़ती है।

नियोजन की कार्यकुशलता –

नियोजन की कार्य कुशलता आदाय और प्रदाय पर निर्भर करती है। उसी नियोजन को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है जिसमें न्यूनतम लागत पर न्यूनतम अवांछनीय परिणामों को प्रबट करते हुए अधिकतम प्रतिफल प्रदान करें। यदि नियोजन कुशलता पूर्वक किया गया है तो व्यक्तिगत एवं सामूहिक सन्तोष अधिकतम होगा।

नियोजन एक मानसिक क्रिया –

नियोजन एक बौद्धिक एवं मानसिक प्रक्रिया है। इसमें विभिन्न प्रबन्धकीय क्रियाओं का सजगतापूर्वक क्रमनिर्धारण किया जाता है। नियोजन उद्देश्यों तथ्यों व सुविचारित अनुमानों की आधारशिला हैं।

नियोजन के उद्देश्य

नियोजन एक सर्वव्यापी मानवीय आचरण है। मानव को प्रत्येक क्षेत्र में सतत विकास के लिए नियोजन का सहारा लेना पड़ता है।

संगठनों में भी नियोजन प्रत्येक स्तर पर देखने को मिलता है। नियोजन के प्रमुख हैं – नियोजन कार्य विशेष के निष्पादन के लिये भावी आवश्यक रूपरेखा बनाकर उसे एक निर्दिष्ट दिशा प्रदान करना है।

नियोजन के माध्यम से संगठन से सम्बन्धित व्यक्तियों (आन्तरिक एवं बाह्य) को संगठन के लक्ष्यों एवं उन्हें प्राप्त करने की विधियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती हैं। नियोजन संगठन की विविध क्रियाओं में एकात्मकता लाता है जो नीतियां के क्रियान्वयन के लिये आवश्यक होता है।

नियोजन उपलब्ध विकल्पों में सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन है। जिसके परिणामस्वरूप क्रियाओं में अपव्यय के स्थान पर मितव्ययता आती है। भावी पूर्वानुमानों के आधार पर ही वर्तमान की योजनायें बनायी जाती हैं। पूर्वानुमान को नियोजन का सारतत्व कहते हैं। नियोजन का उद्देश्य संस्था के भौतिक एवं मानवीय संसाधनों में समन्वय स्थापित कर मानवीय संसाधनों द्वारा संस्था के समस्त संसाधनों को सामूहिक हितों की ओर निर्देशित करता है। नियोजन में भविष्य की कल्पना की जाती है। परिणामों का पूर्वानुमान लगाया जाता है एवं संस्था की जोखिमों एवं सम्भावनाओं को जॉचा परखा जाता है। नियोजन के परिणामस्वरूप संगठन में एक ऐसे वातावरण का सृजन होता है जो स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करता है। नियोजन में योजनानुसार कार्य को पूरा किया जाता है जिससे संगठन को लक्ष्यों की प्राप्ति अपेक्षाकृत सरल हो जाती है। नियोजन, संगठन में स्वस्थ वातावरण का सृजन करता है जिसके परिणामस्वरूप स्वस्थ मोर्चाबन्दी को भी प्रोत्साहन मिलता है। नियोजन समग्र रूप से संगठन के लक्ष्यों, नीतियों, उद्देश्यों, कार्यविधियों कार्यक्रमों, आदि में समन्वय स्थापित करता है।

नियोजन के प्रकार

नियोजन समान तथा विभिन्न समयावधि व उद्देश्यों के लिए किया जाता है इस प्रकार नियोजन के प्रमुख प्रकार हैं :-

दीर्घकालीन नियोजन – जो नियोजन एक लम्बी अवधि के लिये किया जाए उसे दीर्घकालीन नियोजन कहते हैं। दीर्घकालीन नियोजन, दीर्घकालीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। जैसे पूंजीगत सम्पत्तियों की व्यवस्था करना, कुशल कार्मिकों की व्यवस्था करना, नवीन पूंजीगत योजनाओं को कार्यान्वित करना, स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा बनाये रखना आदि।

अल्पकालीन नियोजन – यह नियोजन अल्पअवधि के लिये किया जाता है। इसमें तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति पर अधिक बल दिया जाता है। यह दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, तिमाही, छमाही या वार्षिक हो सकता है।

भौतिक नियोजन – यह नियोजन किसी उद्देश्य के भौतिक संसाधनों से सम्बन्धित होता है। इसमें उपक्रम के लिए भवन, उपकरणों आदि की व्यवस्था की जाती है।

क्रियात्मक नियोजन – यह नियोजन संगठन की क्रियाओं से सम्बन्धित होता है। यह किसी समस्या के एक पहलू के एक विशिष्ट कार्य से सम्बन्धित हो सकता है। यह समस्या, उत्पादन, विज्ञापन, विक्रय, बिल आदि किसी से भी सम्बन्धित हो सकता है।

स्तरीय नियोजन – यह नियोजन ऐसी सभी सगंठनों में पाया जाता है जहॉं कुशल प्रबन्धन हेतु प्रबंध को कई स्तरों में विभाजित कर दिया जाता है यह उच्च स्तरीय, मध्यस्तरीय तथा निम्नस्तरीय हो सकते हैं।

उद्देश्य आधारित नियोजन – इस नियोजन में विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नियोजन किया जाता है जैसे सुधार योजनाओं का नियोजन, नवाचार योजना का नियोजन, विक्रय सम्वर्द्धन नियोजन आदि।

नियोजन के सिद्धान्त

नियोजन करते समय हमें विभिन्न तत्वों पर ध्यान देना होता है। इसे ही विभिन्न सिद्धान्तों में वर्गीकृत किया गया है। दूसरे शब्दों में नियोजन में सिद्धान्तों पर ध्यान देना आवश्यक है। प्राथमिकता का सिद्धान्त – यह सिद्धानत इस मान्यता पर आधारित है कि नियोजन करते समय प्राथमिकताओं का निर्धारण किया जाना चाहिए और उसी के अनुसार नियोजन करना चाहिए। लोच का सिद्धान्त – प्रत्येक नियोजन लोचपूर्ण होना चाहिए। जिससे बदलती हुई परिस्थितियों में हम नियोजन में आवश्यक समायोजन कर सकें।

कार्यकुशलता का सिद्धान्त- नियोजन करते वक्त कार्यकुशलता को ध्यान में रखना चाहिए। इसके तहत न्यूनतम प्रयत्नों एवं लागतों के आधार पर संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहयोग दिया जाता है।

व्यापकता का सिद्धान्त – नियोजन में व्यापकता होनी चाहिए।नियोजन प्रबन्ध के सभी स्तरों के अनुकूल होना चाहिए।

समय का सिद्धान्त – नियोजन करते वक्त समय विशेष का ध्यान रखना चाहिए जिससे सभी कार्यक्रम निर्धारित समय में पूरे किये जा सकें एवं निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। विकल्पों का सिद्धान्त – नियोजन के अन्तगर्त उपलब्ध सभी विकल्पों में से श्रेष्ठतम विकल्प का चयन किया जाता है जिससे न्यूनतम लागत पर वांछित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। सहयोग का सिद्धान्त – नियोजन हेतु सगंठन में कार्यरत सभी कामिर्कों का सहयोग अपेक्षित होता है।

कर्मचारियों के सहयोग एवं परामर्श के आधार पर किये गये नियोजन की सफलता की सम्भावना अधिकतम होती है।

नीति का सिद्धान्त – यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है नियोजन को प्रभावी बनाने के लिए ठोस एवं सुपरिभाषित नीतियॉं बनायी जानी चाहिए। प्रतिस्पर्द्धात्मक मोर्चाबन्दी का सिद्धान्त – यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि नियोजन करते समय प्रतिस्पधी संगठनों की नियोजन तकनीकों, कार्यक्रमों, भावी योजनाओं आदि को ध्यान में रखकर ही नियोजन किया जाना चाहिए। निरन्तरता का सिद्धान्त – नियोजन एक गतिशील तथा निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया है। इसलिये नियोजन करते समय इसकी निरन्तरता को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिये। मूल्यांकन का सिद्धान्त – नियोजन हेतु यह आवश्यक है कि समय समय पर योजनाओं का मूल्यांकन करते रहना चाहिए। जिससे आवश्यकता पड़ने पर उसमें आवश्यक दिशा परिवर्तन किया जा सके।

सम्प्रेषण का सिद्धान्त – प्रभावी सम्प्रेषण के माध्यम से ही प्रभावी नियोजन सम्भव है।नियोजन उसके क्रियान्वयन, विचलन, सुधार आदि के सम्बन्ध में कर्मचारियों को समय समय पर जानकारी दी जा सकती है और सूचनायें प्राप्त की जा सकती हैं।

नियोजन की प्रक्रिया

नियोजन छोटा हो या बड़ा, अल्पकालीन हो या दीर्घकालीन, उसे विधिवत संचालित करने हेतु कुछ आवश्यक कदम उठाने पड़ते हैं।

इन आवश्यक कदमों को ही नियोजन प्रक्रिया कहते हैं। नियोजन प्रक्रिया के प्रमुख चरण हैं – नियोजन की प्रक्रिया

लक्ष्य निर्धारण करना –

व्यावसायिक नियोजन का प्रारम्भ लक्ष्यों को निर्धारित करने से होता है। सर्वप्रथम संगठन का लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। इसके पश्चात इसे विभागों और उपविभागों में विभाजित कर दिया जाता है। कर्मचारी जिस विभाग से सम्बन्धित हो, उसे उस विभाग के लक्ष्य के बारे में अवश्य ही जानकारी होनी चाहिए। लक्ष्य निर्धारण से ही योजनाओं का क्रियान्वयन सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

पूर्वानुमान करना –

लक्ष्य निर्धारण के पश्चात पूर्वानुमान की आवश्यकता पड़ती है। व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न बातों का पूर्वानुमान लगाना पड़ता है। जैसे – पूंजी की आवश्यकता है? कितना उत्पादन करना है? कच्ची सामग्री कहॉ से क्रय करना उपयुक्त होगा? उत्पादन में कितना समय लगना चाहिए। उत्पादन लागत कितनी होनी चाहिए? किसे कितना पारिश्रमिक देना चाहिए? विक्रय मूल्य कितना हो? विक्रय कब, कहॉ, कितना किया जाना चाहिए? आदि इसके अतिरिक्त व्यावसायिक वातावरण से सम्बन्धित अन्य तथ्यों को भी पूर्वानुमान किया जाता है। इसमें तेजी, मन्दी, सरकारी नीतियॉं, वैश्विक दशायें आदि प्रमुख हैं।

सीमा निर्धारण करना –

नियोजन की सीमायें भी होती हैं ऐसे नियोजन जिन पर संगठन का पूर्ण नियंत्रण होता है नियंत्रण योग्य सीमायें कहलाती हैं। इनमें कम्पनी की नीतियॉं, विकास कार्यक्रम कार्यालय तथा शाखाओं की स्थिति आदि आते हैं। अर्द्धनियंत्रण में ऐसे नियोजन को सम्मिलित किया जाता है जिन पर संगठन का पूर्ण नियंत्रण नहीं होता है, इसे आंशिक रूप से ही नियंत्रित किया जा सकता है। इसे अर्द्ध नियंत्रण योग्य नियोजन कहते हैं।इसमें मूल्य नीति, विक्रय क्षेत्र,पारिश्रमिक, अनुलाभ आदि प्रमुख हैं। अनियंत्रण योग्य नियोजन वह है जिन पर संगठन का कोई नियंत्रण नहीं होता है। इसमें देश की जनसंख्या, राजनीतिक वातावरण, कर दरें, भावी मूल्य स्तर, व्यापार चक्र आदि प्रमुख हैं। नियोजन की सीमाओं में प्रबन्धकों में परस्पर मतभेद हैं। यह संगठन एवं उसके लक्ष्यों पर ही निर्भर करता है कि उनके नियोजन की सीमायें क्या होनी चाहिए।

वैकल्पिक कार्यविधियों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन –

नियोजन के इस चरण में वैकल्पिक कार्यविधियों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया जाता है। विकल्पों के विश्लेषण से हमें यह जानकारी प्राप्त हो जाती है कि उपलब्ध विकल्पों में क्या गुण दोष हैं तथा इनके मूल्यांकन से हमें यह पता चलता है कि कौन सा विकल्प किन परिस्थितियों में हमें सर्वोत्तम परिणाम देगा।

श्रेष्ठतम विकल्प का चयन –

नियोजन के इस चरण में उपलब्ध विकल्पों के विश्लेषण एवं मूल्यांकन के पश्चात संगठन के लिए श्रेष्ठतम विकल्प का चयन किया जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि एक संगठन के लिए जो श्रेष्ठतम विकल्प हो वही दूसरे संगठन के लिए भी श्रेष्ठतम विकल्प हो। अत: प्रत्येक संगठन आवश्यकतानुसार श्रेष्ठ विकल्प का चयन करता है।

योजनाओं का निर्माण –

श्रेष्ठतम विकल्प के चयन के पश्चात योजनाओं और उपयोजनाओं का निर्माण किया जाता है। जिससे लक्ष्य को प्राप्त करने में सरलता हो। इन योजनाओं में समय, लागत, लोचशीलता, प्रतिस्पर्द्धा की नीति,आदि घटकों का भी ध्यान रखा जाता है। उपयोजनायें, मूल योजनाओं के क्रियान्वयन को सरल कर देती है। इसके पश्चात योजनाओं के सुचारू संचालन के उद्देश्य से क्रियाओं के निष्पादन का क्रम व समय भी निर्ध्धारित कर दिया जाता है। योजनाओं के निर्माण के समय विभिन्न कर्मचारियों का सहयोग लिया जाता है जिससे योजनाओं का भली-भॉंति निर्माण हो सके।

अनुगमन –

योजनाओं के क्रियान्वयन के पश्चात उनकी सफलताओं का मापन किया जाता है और यदि आवश्यक हुआ तो योजनाओं में आवश्यक संशोधन किया जाता है। बदलती हुई आवश्यकताओं, परिस्थितियों एवं सम्भावित परिवर्तनों के सम्बन्ध में भी योजनाओं में आवश्यक संशोधन किया जाता है इस प्रकार अनुगमन में योजनाओं के क्रियान्वयन के पश्चात हमें जो परिणाम प्राप्त होते हैं। उन्हीं के अनुसार हम आवश्यक कदम उठाते हैं।

नियोजन का महत्व

नियोजन की अनुपस्थिति में व्यवसायिक सफलता प्राप्त करना असम्भव है। जिस प्रकार एक उद्देश्यहीन व्यक्ति जीवन में सफल नहीं हो सकता है उसी प्रकार बिना नियोजन के कोई भी संगठन, व्यावसायिक या गैर व्यावसायिक, सफल नहीं हो सकता है। नियोजन ही संगठन का मार्गदर्शन करता है तथा मार्ग में आने वाली बाधाओं पर विजय प्राप्त करने में सहायक होता है। अर्नेस्ट सी. मिलर ने ठीक ही कहा है कि, "बिना नियोजन के कोई भी कार्य केवल निष्प्रयोजन क्रिया होगी जिससे अव्यवस्था के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त न होगा। नियोजन का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओ से और भी अधिक स्पष्ट होता है –

1. संगठन के उददेश्यों पर ध्यान केन्द्रित करना –

प्रत्येक व्यावसायिक संगठन के आधारभूत लक्ष्य होते हैं। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए ही नियोजन किया जाता है। नियोजन से संगठन के प्रबंधकों का लक्ष्य की ओर ध्यान केन्द्रित रहता है, जिससे संगठन के प्रत्येक कर्मचारी जागरूक और सतर्क बने रहते हैं।संगठन के लक्ष्यों के प्रति सभी

का ध्यान केन्द्रित रहने से अन्र्तविभागीय क्रियाओं में परस्पर समन्वय बना रहता है।इस प्रकार नियोजन विभिन्न क्रियाओं को व्यवस्थित करता है। नियोजन ही संगठन की नीतियों, क्रियाविधियों, कार्यक्रमों तथा अन्य विभागों में समन्वय स्थापित करता है।

2. लागत व्ययों को कम करना –

नियोजन के माध्यम से संगठन की प्रत्येक क्रिया निर्धारित ढंग से की जाती है। यह विधि उपलब्ध विकल्पों में श्रेष्ठतम होती है जिससे व्ययों में कमी आती है। संकट की परिस्थितियों में इनसे निपटने के लिए नियोजन का ही सहारा लेना पड़ता है। अनेकों व्यावसायिक व्याधियों के उपचार हेतु पूर्वानुमान का सहायक होता है। नियोजन से कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। जिससे लागत व्यय में कमी आ जाती है।

3. भविष्य की अनिश्चितता का सामना करने के लिए –

भविष्य सदा अनिश्चित रहता है। आज के व्यावसायिक वातावरण ने इस अनिश्चितता को और भी अधिक बढ़ा दिया है। इन अनिश्चितताओं पर पूर्ण रूप से तो नहीं अपितु काफी हद तक नियोजन के माध्यम से निपटा जा सकता है। भविष्य के गर्भ में झांककर अनिश्चितताओं का उपचार करना ही तो नियोजन है। बाढ़, अग्निकाण्ड, भूकम्प, व्यापारिक उतार चढ़ाव, बदलती हुई बाजार स्थिति कर व्यवस्थाओं में बदलाव आदि अनिश्चितता ही तो है जिन का नियोजन के माध्यम से सामना किया जा सकता है।

4. प्रबन्धकीय कार्यो में समन्वय स्थापित करना –

प्रबन्धकीय कार्यों में नियोजन का प्रथम स्थान है। बिना नियोजन के अन्य सभी प्रन्धकीय कार्यों की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। नियोजन के माध्यम से ही समुचित नियंत्रण, समन्वय, निर्देशन, अभिप्रेरण, स्टाफिंग आदि किये जा सकते हैं। अत: सभी प्रबन्धकीय कार्यों में समन्वय स्थापित करने के लिए नियोजन अपरिहार्य है।

5. मनोबल एवं अभिप्रेरण में वृद्धि –

एक कुशल नियोजन पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक स्तर पर प्रबन्धकों की भागिता एवं कर्मचारियों को प्रोत्साहित किया जाता है। जिससे मनोबल एवं अभिप्रेरण में वृद्धि होती है। कर्मचारियों को यह पता होता है कि कौन सा कार्य कब, कहॉं, कैसे, कितने समय में होना है? इससे उनके मनोबल में वृद्धि होती है।

6. उतावले निर्णयों पर रोक –

नियोजन के अन्तर्गत विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है। विकल्प के चयन के समय परिस्थितियों, समस्याओं, कठिनाइयों व मिव्ययता का पर्याप्त ध्यान रखा जाता है। इससे उतावले निर्णयों पर रोक लगती है जिससे अनावश्यक हानि से संगठन सुरक्षित रहता है। प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में सुधार नियोजन से संगठन की प्रतिस्पर्धा क्षमता में अभिवृद्धि होती है। नियोजन के माध्यम से ही एक संगठन प्रतियोगिता का सामना करने में सफल हो सकता है। कुशल नियोजन से ही एक संगठन अपने प्रतिद्वन्दी संगठन पर विजय प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार नियोजन से प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में सुधार होता हैं।

7. सृजनात्मकता को प्रोत्साहन –

नियोजन में भविष्य के गर्भ में झांककर बेहतर विकल्पों का चयन किया जाता है। इससे संगठन की सृजनात्मकता को प्रोत्साहन मिलता है। शोध, नवप्रवर्तन आदि सृजनात्मकता के प्रोत्साहन का ही परिणाम है। नियोजन मानव जीवन के सभी पहलुओं पर सम्बन्धित होता है। प्रत्येक संगठन की सफलता और विफलता नियोजन पर ही निर्भर करती है। कुशल नियोजन व्यावसायिक संगठन ही नहीं अपितु मानव जीवन, समाज एवं राष्ट्र को भी प्रगति के पथ पर अग्रसर करता है। नियोजन के महत्व के संदर्भ में जितना भी कहा जाय कम है।

प्रादेशिक नियोजन की संकल्पना (Concept of Regional Planning)

किसी भी देश में सभी क्षेत्रों में एक समान आर्थिक विकास नहीं हुआ है । कुछ क्षेत्र बहुत अधिक विकसित हैं तो कुछ पिछड़े हुए हैं । विकास का यह असमान प्रतिरूप (Pattern) सुनिश्चित करता है कि नियोजक एक स्थानिक परिप्रेक्ष्य अपनाएँ तथा विकास में प्रादेशिक असंतुलन कम करने के लिए योजना बनाएँ । इस प्रकार के नियोजन को प्रादेशिक नियोजन कहा जाता है ।

प्रादेशिक नियोजन का अर्थ बहुत से लोगों के लिए विविध वस्तुएं प्रदान करने से है । कुछ अर्थों में यह निश्चित क्षेत्रों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक आर्थिक प्रोत्साहन एवं प्राथमिकता के तौर पर प्रदेशों के मध्य संसाधनों की केन्द्रीयता से सम्बन्धित है जबकि अन्य के लिए यह प्रदेश , उपप्रदेश तथा अधिक से अधिक क्षेत्र के भौतिक , आर्थिक और सामाजिक विकास नियोजन से सम्बन्धित है (गेराल्ड , 1978) । प्रादेशिक नियोजन को परिभाषित करते हुए इनका कहना है कि यह , महत्वपूर्ण प्रादेशिक समस्याओं के प्रति अति आवश्यक उत्तर है । दूसरे शब्दों में - यह किसी प्रदेश के विकास

हेतु अपने विभिन्न रूपों में एक प्रकार की दिशा निर्देशिका है। जो कि प्राकृतवास , आर्थिकी एवं सामाजिकता के समाकलित विकास का पर्यवेक्षण है।

फ्रीडमैन (1972) के शब्दों में यह एक क्षेत्र विशेष के सामाजिक लक्ष्यों को सूत्र रूप में वर्णित करने की एक प्रक्रिया है। जबकि हिल हर्ट (1971) का कहना है कि यह एक निर्णायात्मक प्रक्रिया है जिससे एक क्षेत्र विशेष उपलब्ध संसाधनों की सहायता से अधिक से अधिक लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके।

सुन्दरम एवं प्रकाशाराव (1971) के अनुसार - प्रादेशिक नियोजन एक विधि , दर्शन एवं संयोजना है जो किसी क्षेत्र , क्षेत्र स्तर एवं आर्थिक विषमताओं के निवारण तथा समाकलित विकास का एक ढांचा प्रस्तुत करती है।

एल . आर . सिंह (1986) का विचार है कि क्षेत्रीय नियोजन आवश्यक रूप से एक स्थानिक संश्लेषण है जो कि प्रस्तावित राष्ट्रीय नीति ढांचे के तहत आंतरिक एवं बाह्य उपलब्धियों की प्राप्ति हेतु , धरातलीय विभिन्नताओं के आर्थिक , सामाजिक और पर्यावरणीय तत्वों के मध्य न्यायिक एकता बढ़ाने का प्रयास करता है।

आर . पी . सिंह (1982) , का मत है कि प्रादेशिक विकास नियोजन - प्राकृतिक , मानवीय तथा अन्य संसाधनों का पूर्ण रूपेण उपयोग करने का प्रयास करता है और इस तरह से यह क्षेत्रों तथा क्षेत्रीय समूहों के विकास के परिणाम को वितरित करता है। जिससे सामाजिक - आर्थिक विषमताओं के अन्तर को कम करके जनसमूह के जीवन स्तर में वृद्धि की जा सकती है।

प्रो . मिश्रा (1978) का विचार है कि प्रादेशिक नियोजन राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु आवश्यक साधनों के रूप में पर्यवेक्षित होना चाहिए। यह उपराष्ट्रीय क्षेत्रों की संभाव्यताओं के मूल्यांकन की एक तकनीक है तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के सर्वोत्तम लाभ के लिए उनका विकास करना है। यह आधारभूत संसाधनों के आधार पर आर्थिक सुअवसर , विभिन्नता , शक्ति , आर्थिक संतुलन , पर्यावरण सुधार और जनकल्याण के निर्माण के रूप में सभी आधारभूत लक्ष्यों को समाहित करता है। आगे चलकर उन्होंने इस तथ्य पर प्रकाश डाला कि प्रादेशिक नियोजन का मुख्य कार्य अवखण्डीय तथा स्थानिक विकास प्रक्रिया के तार्किक समाकलन का एक प्रयास है ताकि विभिन्न क्रियाकलापों के मध्य परिपूरकों के लाभों और व्यय योग्य संसाधनों का अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने के लिए क्षेत्रों का फलदायनी उपयोग किया जा सके। अभियांत्रिकी की दृष्टि से प्रादेशिक नियोजन आवश्यक रूप से एक विश्लेषणात्मक विज्ञान है जिसका मुख्य उद्देश्य कार्य योजना का प्रतिपादन एवं उसका

विश्लेषण करना है । यह एक बहुआयामी संकल्पना है जो कि विभिन्न विज्ञानों जैसे - भूगोल , अर्थशास्त्र , समाजशास्त्र के सिद्धांतों तथा समस्त मानवीय अनुभवों से अपने सैद्धांतिक आधार प्राप्त करता है । यह बहुविमीय भी है जो विभिन्न तत्वों जैसे - सामाजिक , आर्थिक , राजनैतिक तत्वों के सर्वांगपूर्ण संगठनों के मध्य एकता स्थापित करता है (साहा , 1981) ।

प्रादेशिक नियोजन को एक विशेष प्रकार के वैज्ञानिक अनुबंध के रूप में लेना चाहिए । सर्वप्रथम यह भविष्योन्मुख सामाजिक लक्ष्यों तथा क्षेत्रीय प्रबंधों के बीच सम्बन्धों को परिलक्षित करता है । इस प्रकार शैक्षिक अनुशासन के रूप में प्रादेशिक नियोजन , राष्ट्रीय महत्व की विकासोन्मुख परियोजनाओं की संतुलित एकता के संदर्भ में अत्यधिक उपयुक्त ढांचों के निर्माण से सम्बन्धित है । इस प्रकार की विस्तृत प्रादेशिक योजनाएं - ग्रामीण निर्माण योजनाओं के पुनर्निर्माण , उद्योगों की अवस्थिति , ऐसे क्षेत्रों के लिए जिनमें विकास योग्य प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हैं और महानगरीय क्षेत्रों के विकास के लिए भी प्रयोग किया जाना आवश्यक है (फ्रीडमैन , 1972) । वस्तुतः प्रादेशिक नियोजन की संकल्पना स्थैतिक नहीं है बल्कि क्षेत्र एवं योजना दोनों ही रूपों में गत्यात्मक है । यह मानवीय एवं प्राकृतिक सम्बन्धों के बदलते रिश्तों तथा क्षेत्रीय आधारों पर परिवर्तनीय है । प्रादेशिक नियोजन की विधियां तथा उद्देश्य चालीस - पचास वर्षों के बाद ठीक उसी प्रकार आज जैसे नहीं रहेंगे । जैसे विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में आज भी समान नहीं है । विकसित देशों में , जहां औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया विगत दो या तीन सौ वर्षों रो जारी है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था बहुत गमय पहले आत्म विकाग की स्थिति तक पहुंच चुकी है तथा प्रति व्यक्ति आय स्तर भी उच्च है , उन विकसित देशों में प्रादेशिक नियोजन का उद्देश्य लोगों के जीवन स्तर में सुधार करना एवं प्रदूषण रहित पर्यावरण का विकास करना है । इन देशों में अत्यधिक शहरीकरण एवं बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न समस्याओं एवं कुप्रभावों को दूर करने के लिए नियोजन का प्रयोग एक साधन के रूप में किया जाता है । इसके विपरीत विकासशील देशों में , जहां औद्योगीकरण की अभी शुरुआत ही हुई है और नगरीकरण , बचत की दर तथा नियोजन अत्यल्प है तथा अधिकतर लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन - यापन कर रहे हैं एवं उपलब्धियों की दृष्टि से काफी पिछड़े हैं , प्रादेशिक नियोजन का उद्देश्य ऐसे प्रदेशों का मात्र भौतिक विकास करना ही नहीं है बल्कि तीव्र गति से सम्पूर्ण राष्ट्र का हर सम्भव आर्थिक विकास करना भी है । राम्पन्न क्षेत्रों के मध्य विषमताओं को कम करना तथा अवनमित क्षेत्रों एवं सभी प्रदेशों की सम्भाव्यताओं एवं संसाधनों का हर सम्भव

सर्वोत्तम प्रयोग करना है ताकि वे सम्पूर्ण राष्ट्रीय उत्पादों के उन्नयन में योगदान कर सकें (मुखर्जी , 1976) ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि (1) प्रादेशिक नियोजन एक विशिष्ट क्षेत्र के क्रियाकलापों में अधिकतम योगदान हेतु विवेकपूर्ण निर्णयों की एक सतत् प्रक्रिया है । यह एक प्रादेशिक क्षेत्र के विभिन्न उप भागों की अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक स्तर की गम्भीरतम् समस्याओं व समाकलित विकास के प्रति उत्तरदायी है । (2) प्रादेशिक नियोजन के उद्देश्य - (अ) प्रदेश में निवास कर रहे लोगों की सामाजिक - आर्थिक दशाओं के उत्थान के लिए क्षेत्र के विस्तृत विकास से है ; (ब) प्रादेशिक संसाधनों एवं सम्भाव्यताओं का पूर्णरूपेण विकास करना ; (स) अन्तराप्रादेशिक एवं अंतर प्रादेशिक असमानताओं को कम करना ; (द) प्रादेशिक समस्याओं का प्राथमिकता के आधार पर निराकरण करना ; (य) सामाजिक न्याय को ध्यान में रखकर आर्थिक लाभों का वितरण तथा (र) जीवन स्तर में सुधार करना । (3) प्रादेशिक नियोजन बहुअनुशासी एवं बहुआयामी है । यह एक संक्रियात्मक विज्ञान है और इसकी संकल्पना गतिशील है । प्रादेशिक नियोजन निर्धारित समय में कार्यात्मक एवं स्थानिक समाकलन को उपलक्षित करता है । कार्यात्मक समाकलन से तात्पर्य एक क्षेत्र के लोगों के जीवन स्तर की दशाओं को उठाने हेतु आर्थिक एवं सामाजिक सेवाओं से है जबकि स्थानिक समाकलन के अन्तर्गत भौतिक क्षेत्र के संतुलित विकास हेतु उप क्षेत्र में सामाजिक - आर्थिक सेवाओं की वास्तविक स्थिति को सम्मिलित किया जाता है । इस प्रकार क्षेत्र के कार्यात्मक अन्तर्सम्बन्ध उसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

प्रादेशिक नियोजन के सैद्धांतिक आधार (Theoretical Basis of Regional Planning) -

जैसा कि पूर्व में वर्णित किया जा चुका है कि प्रादेशिक नियोजन एक बहुविषयी संकल्पना है । इसलिए स्थानिक संगठनों के मानवीय क्रियाकलापों के विषय में सामाजिक विज्ञानों द्वारा उद्घाटित सिद्धांतों एवं परिकल्पनाओं के वर्तमान भंडार से इसका सैद्धांतिक आधार प्राप्त किया गया है । ये सिद्धांत एक विचार हैं जो कि मानवीय क्रियाकलापों के स्थानिक संगठनों , आर्थिक सामाजिक परिवर्तनों एवं समान आर्थिक वितरण तथा आवास हेतु बेहतर भौतिक एवं मानवीय वातावरण को तीव्रगति से आगे ले जाने में सहायक है (मिश्रा , 1974) । इन प्रासंगिक सिद्धांतों को विस्तृत रूप से अध्याय तीन में पृथक - पृथक रूप से वर्णित किया गया है तथा इनकी सहायता से प्रादेशिक नियोजन हेतु एक विशिष्ट कार्ययोजना विकसित करने का प्रयत्न किया गया है । यहां पर संदर्भ रूप में संक्षिप्त चर्चा की

जा रही है । अवस्थितिक सिद्धांतों के प्रतिपादकों में सर्वप्रथम वानथ्यूनेन (1826) ने क्षेत्रीय संगठनों की व्याख्या करने का प्रयास किया। इन्होंने कुछ निश्चित कल्पनाओं के आधार पर प्रत्येक कस्बे के चारों ओर भू - उपयोग के प्रदर्शन के लिए समान केन्द्र वाले चक्रों के नमूने तैयार किए जिनमें प्रत्येक चक्र सर्वोत्तम योग्य कृषि फसलों के उत्पादन के विशिष्टीकरण को प्रदर्शित करता था। वान थ्यनेन द्वारा प्रतिपादित प्रतिरूप में परिवहन खर्च तथा विलग राज्य के अस्तित्व की वास्तविक अभिकल्पना प्रमुख उत्प्रेरणात्मक कारक थी। तत्पश्चात (क्रिस्टालर 1933) ने मानवीय बस्तियों की संख्या , आकार एवं वितरण के सामान्य सिद्धांतों को प्राप्त करने हेतु अपने शास्त्रीय केन्द्रीय स्थान सिद्धांत की व्याख्या प्रस्तुत की । सिद्धांत का निष्कर्ष यह है कि किसी क्षेत्र के विभिन्न सामाजिक - आर्थिक क्रियाकलाप कुछ निश्चित महत्वपूर्ण बिन्दुओं के चारों ओर केन्द्रित होते हैं जिन्हें केन्द्रीय स्थान का नाम दिया जाता है। ये केन्द्रीय स्थान , छोटे - छोटे गांवों से राष्ट्रीय महत्व के कस्वों तक पदानुक्रम के रूप में रहते हैं। लेकिन चूंकि यह सिद्धांत केवल प्रादेशिक संरचना के सेवा कार्यों से सम्बन्धित है , इसलिए आर्थिक विकास से उसका सम्बन्ध अत्यन्त न्यून है। यही कारण है कि इसमें व्यापक एवं समाकलित विचारधारा का अभाव है। आगे चलकर यह विचारधारा लॉश एवं वेरी (1940) द्वारा नवीन लाभकारी विनियोग हेतु प्रादेशिक विकास के लिए संशोधित , विस्तृत एवं सूत्र रूप में वर्णित की गई है। प्रादेशिक विकास हेतु नव प्रवर्तनीय विचारधारा के आधार पर पेरॉक्स (1964) ने सुप्रसिद्ध विकास ध्रुव सिद्धांत प्रस्तुत किया। इस सिद्धांत में इन्होंने विकास के असंतुलन की धारणा पर प्रकाश डालते हुए बताया कि विकास सभी जगह एक समान नहीं होता है। यह विकास ध्रुवों पर विभिन्न रूपों में तीव्रता से होता है। जो कि विभिन्न प्रयोजनों एवं स्रोतों से दृष्टिगोचर होता है। इसके उपरांत अनेक विद्वानों ने प्रादेशिक विकास हेतु विश्लेषणात्मक संयोजना के रूप में इस सिद्धांत में संशोधन प्रस्तुत कर अपना बहुमूल्य योगदान दिया है । आर्थिक - सामाजिक विकास की संकल्पना नवाचरों के अंगीकृत और स्थानिक वितरण से अत्यधिक निकट का सम्बन्ध रखती है। हेगरस्टैण्ड (1952) ने नवाचरों के स्थानिक विस्तार की अभियांत्रिकी को समझने के लिए सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत किए हैं। सारांशतः , ये अवस्थितिक सिद्धांत प्रादेशिक विकास के आर्थिक सिद्धांतों के क्रम में प्रादेशिक विकास नियोजन हेतु सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि इन सिद्धांतों का प्रत्यक्ष प्रयोग नहीं है तथापि इन विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विचार प्रादेशिक विकास में अति महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं।

क्षेत्रीय नियोजन के स्तर (Levels of Regional Planning) भारत जैसे विशाल देश में जहां विभिन्न संसाधनों की सम्पन्नता एवं आर्थिक विकास में प्रादेशिक विषमताएं विद्यमान है , एक नियोजन इकाई द्वारा प्रभाव पूर्ण कार्य सम्भव नहीं है। यहां पर एक राष्ट्रीय स्तर के नियोजन की अपेक्षा विभिन्न क्षेत्रों के लिए बहुस्तरीय नियोजन की आवश्यकता है ताकि सबसे छोटी इकाइयों तक की अभिलाषाओं की पूर्ति हो सके और विभिन्न स्तरों पर संसाधनों की सम्भावनाओं का व्यापक स्तर पर अनुरेखण किया जा सके (सिंह , 1986)।

प्रादेशिक विकास की अवधारणा विभिन्न स्तरों पर योजनाओं के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। विस्तृत रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रादेशिक स्तरों पर जहां नियोजन पूर्ण हो चुका है , नियोजन की प्रक्रियाएं अलग - अलग हो सकती हैं। भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर , जहां अनेक विकास कार्यक्रम प्रभावशाली ढंग से संगठित एवं क्रियान्वित हैं , प्रादेशिक नियोजन सामान्यतः तीन स्तरों वृहद , मध्यम तथा लघु - स्तर पर किया जाता है। यह एक सापेक्षिक शब्द है , जो अधिक विवेकपूर्ण नियोजन तथा आवश्यक प्रदेश हेतु प्रयुक्त होते हैं।

वृहद स्तरीय नियोजन (Macro - level Planning)

वृहद स्तरीय नियोजन अंतरप्रादेशिक समस्याओं के समाधान हेतु एक महत्वपूर्ण पूर्वाकांछित योजना है। एक वृहद स्तरीय प्रदेश के संतुलित सामाजिक - आर्थिक विकास हेतु , पूर्णरूपेण विकास के विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए योजनाओं के तैयार करने का एक औपचारिक अथवा कार्यात्मक उपराष्ट्रीय प्रदेश है। इसके पास पूरक संसाधनों जैसे - भूमि , जल , खनिज , जनसंख्या इत्यादि की पर्याप्तता है जो विस्तृत एवं मध्यम स्तरीय विकास परियोजनाओं / कार्यक्रमों के लिए सहज अनुगामी है। इस प्रकार एक वृहद स्तरीय प्रादेशिक योजना निम्न प्रादेशिक स्तर पर अधिक विस्तृत योजना के लिए राष्ट्रीय स्थानीय ढांचा प्रस्तुत करती है (मिश्रा , 1969)। यदि समस्याएं इस स्तर तक बढ़ी हों कि वे राज्य का अतिक्रमण कर रही हों तो इस स्तर पर नियोजन इकाइयों के अन्तर्गत एक से अधिक राज्य में या एक ही राज्य के कई हिस्सों को समाहित किया जा सकता है।

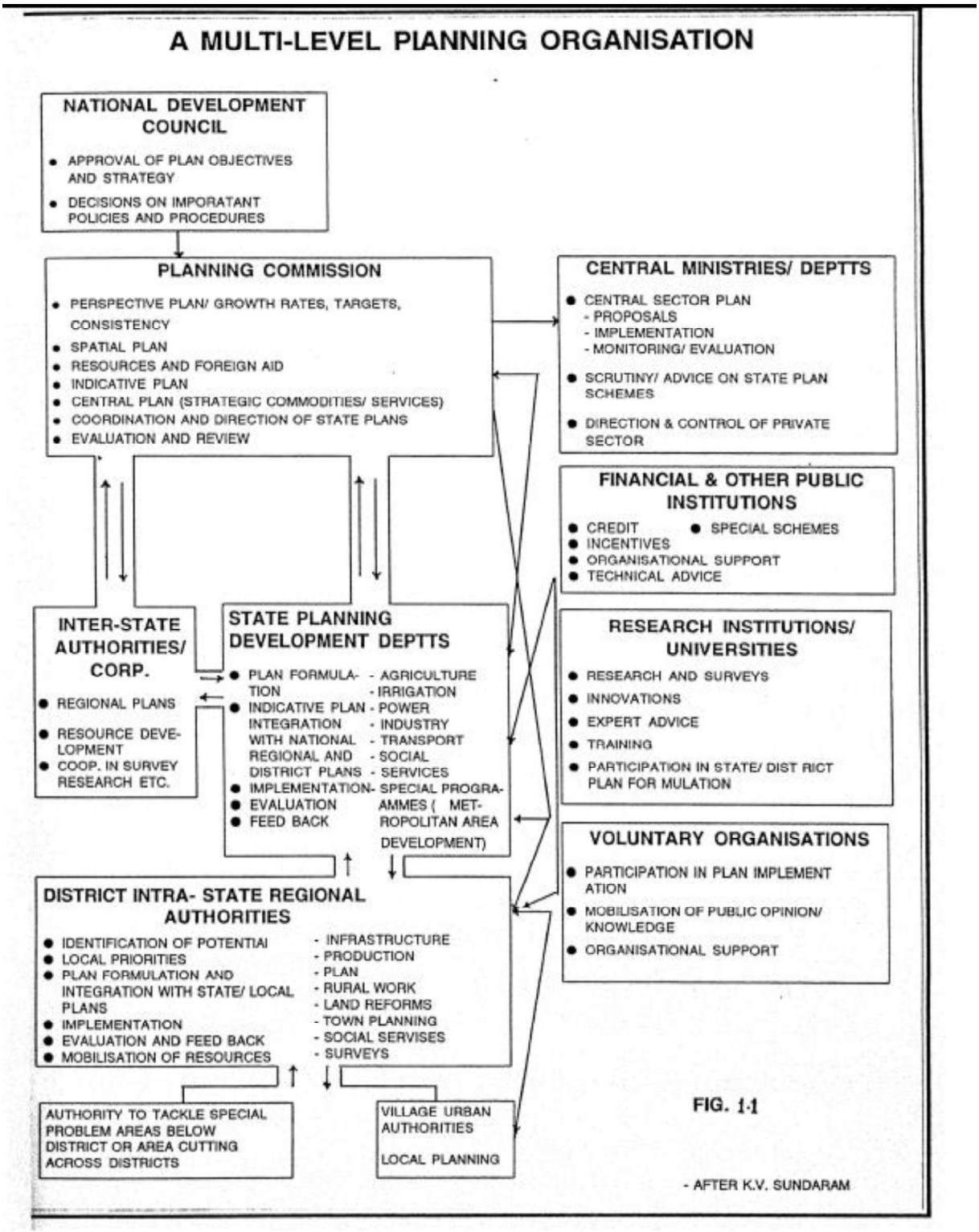

मध्यम - स्तरीय प्रादेशिक नियोजन (Meso - Level Regional Planning) - मध्यमस्तरीय प्रादेशिक नियोजन , वृहद एवं सूक्ष्म - स्तरीय प्रादेशिक नियोजन / योजनाओं की एक कड़ी है। इस प्रकार यह नियोजन मध्यम स्तरीय क्षेत्रों पर किया जाता है जो कि वृहद प्रदेशों के एक प्रकार से

उपविभाग हैं . और नियोजन हेतु प्राथमिक आर्थिक इकाइयों का निर्माण करते हैं। कभी - कभी मध्यम स्तरीय नियोजन का विचार अंतर्राज्यीय प्रादेशिक सीमाओं वाले विशिष्ट समस्याग्रस्त क्षेत्रों के विकास से सम्बन्धित होता है।

सूक्ष्म - स्तरीय नियोजन (Micro - Level Planning) -

सूक्ष्म - स्तरीय नियोजन , छोटे क्षेत्रों के लिए विकास योजनाएं तैयार करता है। इसका मुख्य कार्य ग्रास रूट लेबिल के विकास से सम्बन्धित है तथा इसके अन्तर्गत ऐसे लोगों को नियोजन प्रक्रिया में शामिल किया जाता है , जो लाभ की अपेक्षा रखते हैं। लघु - स्तरीय नियोजन , स्थानीय संसाधनों के क्षमतापूर्ण उपयोग , उच्च स्तरीय आर्थिक विकास के प्राप्ति की सम्भावनाओं , आर्थिक लाभों के वितरण में सामाजिक न्याय , जीवन स्तर में सुधार और निर्णय लेने की प्रक्रिया में अधिकाधिक मात्रा में जनसमूह की सहभागिता से सम्बन्धित है। यह हल न किए जा सकने वाले क्रिया कलापों तथा ग्रामीण क्षेत्र की विस्तृत सम्भावनाओं और कृषि एवं अन्य सम्बन्धित क्रियाओं को आश्रय प्रदान करता है। वस्तुतः लघु - स्तरीमनियोजन हेतु विशिष्ट प्रादेशिक इकाइयों - जनपद , तहसील , विकासखण्ड अथवा गांवों का समूह इत्यादि आदर्श नियोजन इकाइयां हैं। इस उद्देश्य के लिए एक गांव को नियोजन इकाई के रूपं नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि अपर्याप्त जनशक्ति एवं अत्यल्प संसाधनों की उपलब्धता की दृष्टि से यह एक अत्यन्त छोटी इकाई है।

लघु - स्तरीय नियोजन की संकल्पना बहुस्तरीय , बहुखंडीय एवं बहुवर्गीय है। यह बहुस्तरीय इस अर्थ में है कि विभिन्न क्षेत्रीय स्तरों के लिए अलग - अलग विकास योजनाएं समाकलित करता है। गांवों के समूह , विकासखण्डों , तहसील एवं जनपद स्तर के सभी खंडों - उपखंडों की अर्थव्यवस्था पर ध्यान देने के कारण इसे बहुखण्डीय कहते हैं और समाज के विभिन्न वर्गों के लिए योजनाएं प्रस्तुत करने के कारण इसे वहुवर्गीय श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है।

लघु - स्तरीय नियोजन कार्योन्मुख नीचे से ऊपर (Bottom - up) विकास का एक बहुमूल्य उपागम है। इसका मुख्य कार्य ग्रास रूट लेविल पर विकास करना है। इस उद्देश्य के लिए नियोजन में लोगों की सहभागिता तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया आवश्यक है। लघु स्तर पर एक ओर नियोजन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सूचनाओं के एकत्रीकरण एवं योजना निर्माण में लोगों की गहभागिता उपयोगी है तथा दूसरी ओर कार्यक्रमों अथवा परियोजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन में होने वाली त्रुटियों को कम किया जा सकता है। इतना ही नहीं इससे योजनाओं के क्रियान्वयन में हो रही

अनियमितताओं को संकेतित करने और निराकरण में भी सहायता मिल सकती है। वास्तव में , राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को सफलतापूर्वक हासिल करने के उद्देश्य से यह अन्य स्तरों से सूचनाओं का आदान - प्रदान करता है , उचित सलाह ग्रहण करने के साथ - साथ फीड बैंक प्रदान करता है। वस्तुतः ग्रामीण लक्षणों से परिपूर्ण भारत जैसे विकासशील देश में लघु स्तरीय विकास नियोजन का विचार एकीकृत ग्रामीण विकास से अत्यधिक सम्बन्धित है। ' ग्रामीण ' शब्द एक नाभिकेन्द्र मात्र है क्योंकि समग्र क्षेत्र या प्रदेश का विकास हुए विना ग्रामीण क्षेत्र का विकास सम्भव नहीं हो सकता। सामान्यतः ग्रामीण क्षेत्र विस्तृत रूप में कृषि पर आधारित होते हैं। जहां आधारभूत सुविधाओं की कमी तथा विकास की अवस्थापनाओं का प्रायः अभाव पाया जाता है। यह सुविधाएं कृषिगत अवस्थापनाएं और कृषि विकास की सुविधाएं स्वभावतः लघु - स्तरीय विकास नियोजन में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। वास्तव में लघु - स्तरीय नियोजन निश्चित आधारभूत स्वयं सिद्ध प्रमाणों पर आधारित होना चाहिए।

मिश्रा एवं सुन्दरम (1980) के अनुसार (i) यह क्षेत्र में सामाजिक - आर्थिक परिवर्तनों के अनुसार होना चाहिए। इसलिए प्रारम्भ से ही गहनता एवं समावेश्यता प्राप्त करने के क्रम में सामाजिक एवं आर्थिक दोनों किस्म के विकासीय मापक आवश्यक हैं।

(ii) किसी भी परियोजना के संचालन में वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों का आधारभूत समन्वित प्रयास एवं सहयोग आवश्यक है।

(iii) लघु - स्तरीय नियोजन हेतु आंतरिक अभिप्रेरणा , वाह्य प्रोत्साहन एवं उत्प्रेरणात्मक मध्यस्थता होनी चाहिए।

(iv) नियोजन / परियोजना के सफल संचालन हेतु प्रारम्भ से ही स्थानीय निवासियों की विस्तृत सहभागिता आवश्यक है।

(v) विभिन्न स्तरों के मध्य सम्बद्ध अंतक्रियाओं एवं अंतराक्रियाओं के बीच पदानुक्रम के आधार पर इसे अन्य स्तरों से सम्बन्धित होना चाहिए।

(vi) इसे कार्योन्मुख प्रयास होना चाहिए जो कि प्रारम्भ से ही मध्यस्थता और अति आवश्यक समस्याओं पर बिना कोई समय लिए हुए नियोजन प्रयासों हेतु तुरन्त कार्यवाही की जा सके। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि लघु - स्तरीय नियोजन स्थानीय जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु क्षेत्र के संतुलित सामाजिक - आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति से सम्बन्धित है। इस स्तर के नियोजन में स्थानीय संसाधनों के उपभोग एवं सम्भाव्यताओं तथा निर्णय

लेने की प्रक्रिया में स्थानीय जनता को शामिल किया जाना चाहिए जो कि विकास के लिए आशान्वित है।

लघु - स्तरीय नियोजन के उद्देश्य एवं विषयवस्तु (Aims and Objectives of Micro - Level Planning) –

लघु - स्तरीय नियोजन के उद्देश्यों एवं विषयवस्तु के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने समय - समय पर विचार प्रस्तुत किए हैं - आर . एन . त्रिपाठी एवं उनके सहयोगियों (1980) ने नियोजन के निम्नांकित मुख्य उद्देश्य बतलाए हैं।

(1) क्षेत्र में संसाधनों के वर्तमान उपयोग के स्तर एवं क्षेत्रीय विकास स्तर का विश्लेषण करना।

(2) सामान्यतः विभिन्न वर्गों एवं विशेषतः निर्धन वर्ग के मध्य रोजगार एवं आय के संदर्भ में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करना।

(3) विकास केन्द्रों की पहचान करना , जो कि विकास क्रियाकलापों की प्रकिया को नियमित एवं विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं।

(4) अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विकास की सम्भाव्यताओं का मूल्यांकन करना तथा विकास एवं रोजगार के सुअवसर प्रदान करने के लिए उपयुक्त कार्यक्रमों का अनुरेखण करना।

(5) कमजोर वर्गों के बीच आय के अंतर को कम करने तथा गरीबी रेखा से ऊंचे उठने में उनकी सहायता करने वाले उपयोगी जीवन आश्रय देने वाले उत्पादक कार्यक्रमों की पहचान करना।

(6) सम्पूर्ण जनपद योजना के ढांचे पर विकासखण्डीय योजना का समाकलन करना।

(7) विभिन्न क्षेत्रीय कार्यक्रमों के साथ खण्ड स्तरीय प्रदत्त सुविधा संरचनाओं तथा विभिन्न कार्यक्रमों के लाभोन्मुखी क्रियाकलापों को समाकलित करना।

भारत सरकार के योजना आयोग 1978 में विकासखण्ड स्तर पर कार्य करने वाले समूहों के प्रतिवेदन के अनुसार - लघु - स्तरीय नियोजन का अभिप्राय निम्नांकित लक्ष्यों (मिश्रा एवं सुन्दरम , 1980) को प्राप्त करने का एक साधन है

(1) क्षेत्रीय आय एवं रोजगार को बढ़ाने हेतु अधिकतम विकास सम्भावनाओं का उपयोग करना।

(2) जनसंख्या के कमजोर वर्गों जैसे - लघु एवं सीमान्त कृषक , सहभागी कृषक , कृषि मजदूरों , ग्रामीण शिल्पकारों इत्यादि के विकास के आनुपातिक लाभों की अपेक्षा वृहद स्तरीय हितों की वृद्धि को सुनिश्चित करना।

(3) जनतांत्रिक वितरण प्रणाली के माध्यम से स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएं , पेयजल , आवास , शिक्षा एवं न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को पूर्ण करना।

(4) उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सामाजिक - आर्थिक अवस्थापनाओं का विकास करना।

(5) गरीब वर्गों की पसंदगी के संरक्षण के क्रम में वर्तमान में संस्थाओं / संगठनों को पुनरोन्मुखी बनाना।

(6) विशेषतः निर्धनों को बरबादी से संरक्षण प्रदान करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों का विकास करना।

(7) मूल्य चुकाने हेतु सम्पत्तियों के स्वामित्वों के सम्बन्ध में सुधारवादी एवं अत्यधिक समानतावादी संरचना का उन्नयन करना।

(8) रोजगार , विपणन एवं प्रसार वित्त नियोजन संस्थानों को स्थापित करने और कार्यकुशलता को बढ़ाकर तथा तकनीक को उच्चीकृत कर वर्तमान समय में गरीव वर्गों के व्यवसाय को बढ़ाना एवं रोजगार के सुअवसर प्रदान करना।

(9) सार्वजनिक कार्यों में रोजगार के सुअवसर प्रदान कर बेरोजगारी को समाप्त करना। एवार्ड (1980) ने सामाजिक - आर्थिक संदशों में लघु - स्तरीय नियोजन के उद्देश्यों का ढांचा प्रस्तुत किया है।

सामाजिक उद्देश्य (Social Objectives) -

(1) अन्याय एवं शोषण का निराकरण करना ; (2) विषमताओं को समाप्त करना ; (3) नियोजन प्रक्रियाओं में रोजगार की सम्बद्धता को प्रोत्साहित करना और आत्मविश्वास की भावना में प्रोन्नति करना ; तथा (4) पारस्परिक सहायता हेतु लोगों को संगठित करना।

आर्थिक उद्देश्य (Economic Objectives)

(1) पूर्ण रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना ; (2) स्थानीय संसाधनों एवं उत्पादन के साधनों को स्थानीय लोगों के नियंत्रण में वास्तविक समानता लाने के क्रम में उन्नतिशील बनाना ; (3) स्थानीय भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का प्रयोग करना एवं जहां कहीं आवश्यक हो , वाह्य निवेश द्वारा उनकी सम्पूर्ति करना ; (4) स्थानीय निवासियों की आधारभूत न्यूनतम् आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय संसाधनों के माध्मय से करना ; तथा (5) अवस्थापनात्मक सुविधाएं जैसे - परिवहन

मार्गों , बाजार , शक्ति संसाधनों , कृषि निवेशों , वितरण केन्द्रों एवं सहकारी संस्थाओं इत्यादि का नियोजन करना।

आर . पी . मिश्रा एवं के . वी . . सुन्दरम (1980) ने लघु स्तरीय नियोजन के लक्ष्य निर्धारित किए (1) वस्तुतः क्षेत्र में अधिक से अधिक अवसर प्रदान कर मौसमी तथा पूर्ण वेरोजगारी को कम करना और स्थानीय निवासियों की आय को बढ़ाकर उनका आत्मविकास करना। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सम्पूर्ण विकास कार्यक्रम एक पूर्ण आर्थिक रोजगार के उद्देश्यों से युक्त होना चाहिए। (2) ग्रामीण निर्धनों के शोषण को रोकने के लिए निश्चित मापदण्ड तैयार करना तथा उनकी कुशलता की वृद्धि में सहायता करना और अपने पैरों पर खड़े होने के लिए सामर्थ्य प्रदान करना। तात्पर्य यह है कि इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत निर्धन वर्ग के लोगों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान कर उनको आगे बढ़ने के सुअवसर जुटाना। (3) स्थानीय क्षेत्रों में उत्पादन एवं उत्पादकता को बढ़ाना। इसका यह अर्थ हुआ कि विकास कार्यक्रमों को स्थानीय संसाधनों एवं सम्भावनाओं पर आधारित होना चाहिए और उनके दोहन के लिए गहन श्रम से परिपूर्ण स्वदेशोत्पन्न तकनीक को स्वीकार करना।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि लघु - स्तरीय नियोजन किसी क्षेत्र के विकास की संतुलित एवं सम्बद्ध रूपरेखा प्रस्तुत करता है। समाज के विभिन्न खण्डों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तैयार की गई कार्य योजना का उद्देश्य स्थानीय प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों का उपयोग करना है जिससे ग्रामीण - निर्धनों को रोजगार एवं अन्य सुविधाएं प्रदान की जा सकें। इस विधि में योजना निर्माण एवं कार्यान्वयन में लोगों की सहभागिता सुनिश्चित की जाती है।

प्रादेशिक एवं स्थानिक स्तर के नियोजन हेतु उपागम एवं संयोजनाएं (Strategies and Approaches for Planning at Regional & Local Levels) -

प्रादेशिक एवं स्थानिक स्तर पर नियोजन हेतु संयोजनाओं एवं उपागमों की समय - समय पर संस्तुति की जाती रही है लेकिन अभी तक निश्चित रूप से ऐसी कोई एक सर्वमान्य विधि का अन्वेषण नहीं किया जा सका है जो नियत रूप से सदैव एवं सर्वत्र इस पूर्ण विश्वास के साथ प्रयोग की जा सके कि उससे इच्छित परिणाम प्राप्त हो सकें (हेगिन्स , 1981)। यह उपयोगी होगा कि यदि ऐसे नियोजन उपागमों का मूल्यांकन किया जाए तो प्रादेशिक एवं स्थानीय स्तर पर विकास कार्यों को प्रभावित करने में समर्थ हों। ऐसी कुछ योजनाएं निम्न हैं

विकास ध्रुव एवं विकास केन्द्र संकल्पना - (Growth Pole and Growth Centre Approach) -

विकास ध्रुव केन्द्र से बाहर की ओर जाने वाली तथा केन्द्र की ओर आने वाली शक्तियों के साथ एक आदर्श आर्थिक स्थान का सूचक है। इस संकल्पना के अनुसार एक ही समय में सर्वत्र एक समान विकास नहीं होता है। यह वृद्धि , तीव्रता एवं विस्तार लिए विभिन्न दिशा मागों में विविध प्रयासों के परिणाम स्वरूप विकास केन्द्र पर होती है। इसका उपयोग या तो विकन्द्रित नीति के तहत किया गया था जिससे ध्रुवीकरण के प्रभाव में वृद्धि हो सके या उसे औद्योगिक क्षेत्रों की स्थापना हेतु सार्वजनिक व्यय की नीति के रूप में अपनाया गया था। यह संयोजना वास्तव में वृहद स्थानिक संगठनात्मक पक्षों अथवा प्रादेशिक विकास से बहुत अधिक सम्बन्धित नहीं है। अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट है कि विकास ध्रुव उपागम के माध्यम से सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त करना अथवा क्षेत्रीय असमानताओं में कमी लाना सम्भव नहीं है।

वृद्धि केन्द्र उपागम , जिसे एक वैकल्पिक संयोजना समझा गया था क्षेत्रीय विकास के लिए अधिक प्रासंगिक है क्योंकि यह विकेन्द्रीकृत प्रतिरूप से सम्बन्धित है और केन्द्रीय स्थान सिद्धांतों को प्रमुख आधार के रूप में स्वीकार करता है। इस विधि का विशद् वर्णन तृतीय अध्याय में किया गया है।

एग्रोपोलिटन उपागम (Agro - Polition Approach) -

कृषि पर आधारित शहरीकरण को विकसित करने की नई विचार प्रणाली में जैसा कि निम्न क्रम के केन्द्रों के योगदान के अन्तर्गत उत्पादन संसाधित करना एवं विपणन को प्रदान करने की कृषि पर आधारित विधि को एग्रोपोलिटन उपागम कहा जाता है (शर्मा , 1984) | जॉन फ्रीडमैन द्वारा प्रतिपादित यह एक स्थानीय संगठनों का वैकल्पिक प्रतिरूप है। जो कि नगरीय औद्योगिक विधियों की समालोचना के परिणाम स्वरूप निर्मित हुआ है । इस सिद्धांत के अनुसार विकास पारिस्थितिकीय सीमाओं पर आधारित होना चाहिए , ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और ग्रामीण विकास की योजना विकेन्द्रीकृत होनी चाहिए तथा ग्रामीण विकास सम्बन्धी योजनाएं सहभागितायुक्त तथा स्थानीय परिस्थितियों से गहराई से सम्बद्ध होनी चाहिए (मिश्रा , 1973)। इस नई संयोजना को लागू करने के लिए कृषि पर आधारित स्थानिक नीति को अपनाया जाना चाहिए। इस विधि का उद्देश्य विशिष्ट ग्रामीण पर्यावरण के अनुसार शहरीकरण के तत्वों के द्वारा ग्रामीण परिवेश में परिवर्तन लाना है। इसका अर्थ यह है कि ग्रामीण लोगों को उनके खेत खलिहानों

में शहरीय वातावरण का प्रादर्श प्रस्तुत कर , वे जहां हैं , वहीं रहने के लिए प्रोत्साहित करना है बजाय कि ग्रामीणों को शहरों की ओर आने हेतु प्रोत्साहित करें। इसके द्वारा यह सुझाव प्रस्तुत किया जाता है कि सामाजिक अन्तक्रियाओं का यह सिद्धांत एक गांव से लेकर अनेक गांवों तक होगा ताकि विस्तृत रूप में सामाजिक , आर्थिक तथा राजनैतिक एग्रोपोलिटन भू भाग का निर्माण किया जा सके ।

इस योजना से ग्रामीण एवं शहरी आय के स्रोत सार्वकालिक हो जाते हैं और रचनात्मक कार्यों को विविधता प्रदान कर उनकी असमानताओं को दूर किया जाता है। यह उपागम सामुदायिक विकास योजना के अत्यधिक निकट है। इस योजना में कृषि विकास पर अधिक वल दिया गया था , लेकिन गरीबों के जीवन स्तर को सुधारने में यह योजना असफल रही है। इसका कारण यह है कि अन्य ग्रामीण विकास संयोजनाओं को सही ढंग से लागू नहीं किया गया जिन्हें इसका समग्र अंग होना चाहिए था।

ग्रामीण औद्योगीकरण उपागम (Rural Industrialisation Approach) -

यह विधि कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित करती है तथा लघु औद्योगिक क्षेत्रों एवं उनके औद्योगिक विकास पर भी बल देती है। कुछ देशों में इस विधि को महानगरीय शहरों की वृद्धि को कम करने के लिए अपनाया गया है। लेकिन यह योजना बहुत सफल नहीं रही। यह वृहद एवं लघु खण्डों को जैविक सम्बद्धता प्रदान करने में एक प्रकार से विफल रही है तथा स्थानीय जनसंख्या को रोजगार के अतिरिक्त सुअवसर प्रदान कर पाने में भी सफल सिद्ध नहीं हो सकी है।

समन्वित ग्रामीण विकास एवं समन्वित क्षेत्र विकास उपागम (Integrated Rural Development & Integrated Area Development Approach)

किसी भी क्षेत्र के सर्वांगीण विकास हेतु यह सबसे उपयुक्त विधि है। इसमें विशेषतया ग्रामीणजनों में आत्मनिर्भरता लाने , उत्पादकता बढ़ाने तथा लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने पर जोर दिया जाता है। श्रम आधारित कृषि , सार्वजनिक रोजगार सम्बन्धी कार्य , कृषि फार्मों से जुड़े हुए छोटे उद्योगों की स्थापना , स्वायत्तशासी , निर्णय की सहभागिता , शहरी जीवन पर आधारित ग्रामीण विकास एवं आत्म निर्भरता प्रदान करने वाला संस्थागत ढांचा तथा विभिन्न क्षेत्रों की योजनाओं के समन्वय के लिए छ : बुनियादी तत्व शामिल किए गए हैं (वाटरसन , १९७७)। ' रिहोबोट ' संस्था

का प्रमुख उद्देश्य कृषि क्षेत्र में सुधार एवं बदलाव लाना है। वस्तुतः यह सम्पूर्ण विधि निर्धनों के उत्थान हेतु क्रियान्वित है। समाकलित ग्रामीण विकास योजना वास्तव में एक तकनीकी नौकरशाही का स्वरूप बनकर रह गई है। यही कारण है कि वह अपने इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल नहीं हो सकी है। चूंकि समन्वित ग्रामीण विकास का उद्देश्य , ग्रामीण क्षेत्रों का समग्र विकास करना है , इसलिए यह समन्वित क्षेत्रीय विकास से बहुत अधिक भिन्न नहीं है। समन्वित क्षेत्रीय विकास उपागम का कार्य क्षेत्र सम्पूर्ण क्षेत्र होता है , चाहे वह ग्रामीण क्षेत्र हो या नगरीय। जबकि पूर्ववर्ती विधि में वस्तुत : ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर जोर दिया जाता है। समन्वित क्षेत्र विकास योजना का अर्थ एक विशेष भौगोलिक भूभाग के समन्वित विकास से है जिसमें विकास के प्रमुख पक्षों जैसे - कृषि , उद्योग , यातायात , संचार , शिक्षा , स्वास्थ्य , मनोरंजन एवं अन्य ऐसी सेवाओं के विकास से है जिनसे ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर में सुधार एवं सम्पूर्ण क्षेत्र का सर्वांगीण विकास किया जा सके। समन्वित क्षेत्र विकास की अवधारणा का अर्थ दो प्रकार - (1) कार्यात्मक एवं (2) स्थानिक समाकलन से है , जो कि एक - दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित हैं। पूर्ववर्ती योजना का उद्देश्य उन सभी आर्थिक एवं सामाजिक क्रियाकलापों के समाकलन से है , जो लोगों के जीवन स्तर को प्रभावित करते हैं जबकि पार्श्ववर्ती योजना का उद्देश्य क्षेत्र एवं एक विशेष स्थान में कार्यात्मक सम्बन्धों की पहचान से है।

आधारभूत आवश्यकता उपागम (Basic Needs Approach)

इस विधि का उद्देश्य पिछड़े क्षेत्रों में रहने वाले गरीव लोगों को कुछ निश्चित लाभ पहुंचाने हेतु एक आवश्यक ढांचे का निर्माण करना है। इस उपागम के क्रियान्वयन से ग्रामीणों के जीवन स्तर में निश्चित ही कुछ गुणात्मक सुधार आया है लेकिन यह गरीबी के कारणों का पता लगाने में सफल न सिद्ध हो सकने के कारण असफल रही है।

आधारभूत सेवा उपागम (Basic Service approach)

इस विधि का प्रमुख उद्देश्य जिसका कि समर्थन अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं , यथा - यूनिसेफ तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा किया गया है , सभी क्षेत्रों एवं सभी समुदायों विशेषतः समाज के कमजोर वर्ग एवं असहाय लोगों के लिए बुनियादी सेवाएं उपलब्ध कराना है।

सहगामी नियोजन एवं आत्मनिर्भरता विकास उपागम - (Participatory Planning and Self Reliant Development Approach) यह विधि बुनियादी सेवा उपागम से निकटस्थ सम्बन्ध रखती है। इस विधि में आत्मनिर्भरता लाने हेतु वृहद पैमाने पर विचार किया गया है। इससे स्वसम्पोषण विकास प्रक्रिया का जन्म होता है । इससे ग्रामीण समुदायों को अपने संसाधनों को गत्यात्मक स्वरूप प्रदान करते हुए अपने क्रियाकलापों को संगठित एवं व्यवस्थित करने की प्रेरणा मिलती है और शासन अत्यन्त जटिल रिक्तताओं को पूरा करने में ही मदद देता है।

लक्ष्य वर्ग एवं लक्ष्य समूह उपागम (Target Sector and Target Group Approach) - लक्ष्य वर्ग उपागम एक सीमित उद्देश्य के लिए है , जबकि लक्ष्य समूह उपागम एक विशिष्ट सामुदायिक उपागम है।

विकास हेतु एकीकृत उपागम (Unified Approach to Development) -
इस विधि में राष्ट्रीय विकास योजनाओं एवं क्रियाकलापों को स्थानिक आवश्यकताओं के अनुसार विभाजित किया जाता है और विकास योजना विधि समूह से लघु - स्तरीय निर्णयों पर आधारित होती है ताकि राष्ट्रीय योजना नीति का सफलता पूर्वक क्रियान्वयन किया जा सके। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि अभी तक इनमें से किसी भी विधि ने विकास योजना के लिए समुचित मार्गदर्शन प्रदान नहीं किया है। वास्तव में ये गरीबी के कुछ पहलुओं को ही स्पर्श कर सकी हैं। किन्तु उसी समय सभी पहलुओं को स्पर्श करने में सफलता प्राप्त नहीं कर सकी हैं जबकि सर्वांगीण विकास हेतु आवश्यक है कि सभी समस्याओं का एक साथ निराकरण किया जाए। अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि नियोजन नीतियों का निर्धारण लोगों की बुनियादी , आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में किया जाए। जिसमें मानव कल्याण प्रमुखतः गरीव वर्गों के जीवन स्तर के उत्थान पर बल दिया जाए। साथ ही लाभ से वंचित एवं पिछड़े हुए लोगों की निर्धनता को दूर करने एवं उनके जीवन स्तर में गुणात्मक सुधार लाने तथा आधारभूत बुनियादी सेवाओं को उपलब्ध कराने के लिए योजनाओं का निर्माण किया जाए। साथ ही आर्थिक प्रगति पर विशेष जोर दिया जाए जिसका माध्यम नगरीय औद्योगीकरण से लेकर समन्वित ग्रामीण विकास विधि हो तथा उपलब्ध सभी मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का अधिकाधिक मात्रा में उपयोग करने के लिए योजना के सभी स्तरों पर लोगों की भागीदारी सुनिश्चित की जाए। इसके अलावा विशेषतः प्रादेशिक एवं क्षेत्रीय स्तरों पर नियोजित

विकास की संयोजना में सहभागी योजना , मार्गदर्शन एवं मूल्यांकन का एक आत्मनिर्भर समाज बनाने में महत्वपूर्ण स्थान है (शर्मा एवं शास्त्री , 1984) ।

वर्तमान अध्ययन में इन सभी कारकों पर विचार किया गया है और ऐसी विषयवस्तु के साथ विकास केन्द्र विधि स्वीकार की गई है ताकि समाकलित ग्रामीण क्षेत्रीय विकास सम्भव हो ।

भारत में लघु स्तरीय नियोजन की आवश्यकता एवं उपयोगिता (Need and Rationale for Micro Level Planning in India) -

योजना अवधि की शुरुआत से ही देश में योजना का प्रारूप वस्तुतः अवखण्डीय एवं वृहद स्तरीय रहा है । यह अत्यधिक केन्द्रीकृत भी रही है । इसमें कार्यान्वयन की तुलना में योजना निर्धारण पर विशेष जोर दिया गया है । परिणामतः राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त उपलब्धियां ग्रामीण एवं गरीब लोगों तक नहीं पहुंच सकी हैं । जिसका परिणाम यह हुआ कि आबादी का एक प्रमुख भाग , विशेषतः गरीब वर्ग आर्थिक विकास की मुख्य धारा से बाहर ही रह गया है । समाज का सम्पन्न वर्ग तथा आर्थिक दृष्टि से देश के विकसित क्षेत्र ही गरीबों , अशिक्षित समुदाय तथा पिछड़े हुए लोगों की कीमत पर इस योजना से लाभान्वित होते हैं । इसका परिणाम यह हुआ कि गरीवी एवं अमीरी के मध्य अन्तर में बेतहाशा वृद्धि हुई है । इस प्रकार , सभी वर्गों एवं सभी क्षेत्रों के लिए एक समान नीति न होने के कारण वर्तमान नियोजन तंत्र सभी क्षेत्रों एवं सभी समूहों को समान रूप से न्याय प्रदान करने में असफल रहा है । यह योजना सूक्ष्म स्तर पर गरीब लोगों के जीवन स्तर को सुधारने और बड़ी संख्या में गरीबी एवं बेरोजगारी को दूर करने में असफल रही है ।

वस्तुतः ग्रामीण गरीबी को दूर करना , वेरोजगारी की स्थिति में कमी लाना , क्षेत्रीय सामाजिक एवं वर्गीय असमानता को दूर करना सामाजिक न्याय और समानता तथा कल्याण के सामाजिक - आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना तभी सम्भव है जब योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन सूक्ष्म स्तर पर किया जाए । यहां पर न केवल इस बात की आवश्यकता है कि देश की उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो तथा राष्ट्रीय आय में विकास हो बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि विकास के लाभों का वितरण इस प्रकार किया जाए कि समाज का कमजोर वर्ग विकास के लाभों को अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त कर सके । इसके अलावा अन्य तथ्य यह है कि भारत जैसे विशाल देश में , जहां प्रादेशिक एवं स्थानीय स्तर पर वृहद मात्रा में विकास सम्बन्धी विषमताएं तथा सामाजिक संरचना में असमानताएं

विद्यमान हैं साथ ही क्षेत्र विशेष एवं विशिष्ट समूहों में भी समस्याएं एवं सम्भावनाएं मौजूद हैं वहां विकास एवं उपर्युक्त समस्याओं के समाधान हेतु बिकेन्द्रित योजना की महती आवश्यकता है । केन्द्रीकृत योजना विभिन्न क्षेत्रीय एवं वर्गीय सभी जरूरतों को पूरा नहीं कर सकती है । इसलिए नियोजन को उस स्तर पर लाना आवश्यक है , जहां पर विकास योजना का निर्माण एवं क्रियान्वयन वेहतर ढंग से सम्भव हो (मिश्रा एवं सुन्दरम , 1980) ।

इसी प्रकार , नियोजन प्रक्रिया में ऐसे लोगों की सहभागिता एवं उपस्थिति अति आवश्यक है जिसके लिए यह योजना बनाई जा रही है। इस उद्देश्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है , जब लघु प्रादेशिक स्तर पर योजना लागू की जाए। लघु स्तरीय नियोजन इस वात को सुनिश्चित करता है कि स्थानीय आवश्यकताओं की अधिकाधिक पूर्ति हो सके। स्थानीय लोगों में योजना के प्रति उत्सुकता पैदा हो , स्थानीय लोगों की भागीदारी एवं सामाजिक न्याय की प्राप्ति हो सके , स्थानीय संसाधनों का उपयोग किया जा सके , गांव के गरीब लोगों के शोषण को रोका जा सके , ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों एवं स्थानीय संसाधनों के बहिर्गमन एवं दुरुपयोग को रोका जा सके। ग्रामीण पूंजी को बड़े शहरों में लाने से रोका जा सके। ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थापना की जा सके। ग्रामीण क्षेत्रों के उत्पादन में वृद्धि करके लोगों का जीवन स्तर सुधारा जा सके और उच्च स्तरीय योजनाओं को बड़े पैमाने पर लागू कर सामाजिक - आर्थिक विकास के उद्देश्यों को पूरा किया जा सके। वस्तुतः लघु स्तरीय नियोजन एक ऐसा महत्वपूर्ण साधन है जिसके माध्यम से ग्रामीण इलाकों में आत्म निर्भरता लाई जा सकती है तथा स्थानीय लोगों को अपने खुद के विकास से सम्बद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार भारत जैसे विकासशील देश में , जहां पर न केवल अधिक सामाजिक आर्थिक दबाव है बल्कि तनाव भी है , लघु स्तरीय नियोजन की आवश्यकता पर जोर देने की प्रबल आवश्यकता है।

नियोजन प्रक्रिया (Planning Process) -

नियोजन एक अग्रगामी एवं अविरल प्रक्रिया है। इसकी प्रकृति विस्तृत तथा रामाकलित एवं उपागम में अन्तरानुशासित होनी चाहिए। इसके अलावा नियोजन प्रक्रिया नवप्रवर्तनीय हो एवं योजनाकाल के मध्य में मूल्यांकन प्रक्रिया पर आधारित होनी चाहिए । नियोजन प्रक्रिया , क्षेत्र विशेष की समस्याओं की जानकारी तथा उनके निदान हेतु अपनाई गई नीतियों से प्रारम्भ होती है । इस प्रक्रिया की निम्नांकित पांच उपप्रक्रियाएं हैं -

(i) वर्तमान स्थितियों का विश्लेषण ;

(ii) लक्ष्य निर्धारण ;

(iii) योजना निर्धारण

(iv) योजना मूल्यांकन एवं नीति निर्धारण तथा

(v) योजना का निष्पादन।

उपरोक्त पांचों उपतंत्र निरंतर चलने वाली प्रक्रिया का अंग हैं जो कि निम्नांकित विकास दर के माध्यम से होकर लागू होती हैं

(i) नीति आयोजन

(ii) नीति निरूपण

(iii) नीति निष्पादन।

चित्र से स्पष्ट है कि वर्तमान दशाओं का विश्लेषण , जो कि प्रदेशों की वर्तमान विशेषताओं की पहचान से सम्बन्धित है , सभी उपतंत्रों का आधारभूत उपतंत्र है। इसमें निम्नांकित बातें शामिल है-

(1) पर्यावरणीय विश्लेषण , जिसमें सामाजिक - आर्थिक - राजनैतिक परिवर्तनों , संस्थाओं , वर्गीय आवश्यकताओं एवं तकनीकी विकास सम्मिलित हैं ,

(2) संसाधनों का विश्लेषण , जिसमें प्रबंधकीय आर्थिक - तकनीकी और क्षेत्र विशेष की वित्तीय स्थिति की जानकारी प्राप्त हो , और

(3) मूल्य विश्लेषण , जिसमें सामाजिक - सांस्कृतिक पक्षों , प्रश्नों और स्थानीय लोगों की इच्छाओं के विवरण का परीक्षण।

इस प्रयास में , इस प्रकार सर्वेक्षण का कार्य आंकड़ों का संग्रह एवं विश्लेषण तथा सामाजिक आर्थिक परिवर्ती राशियों का प्रक्षेपण किया जाता है।

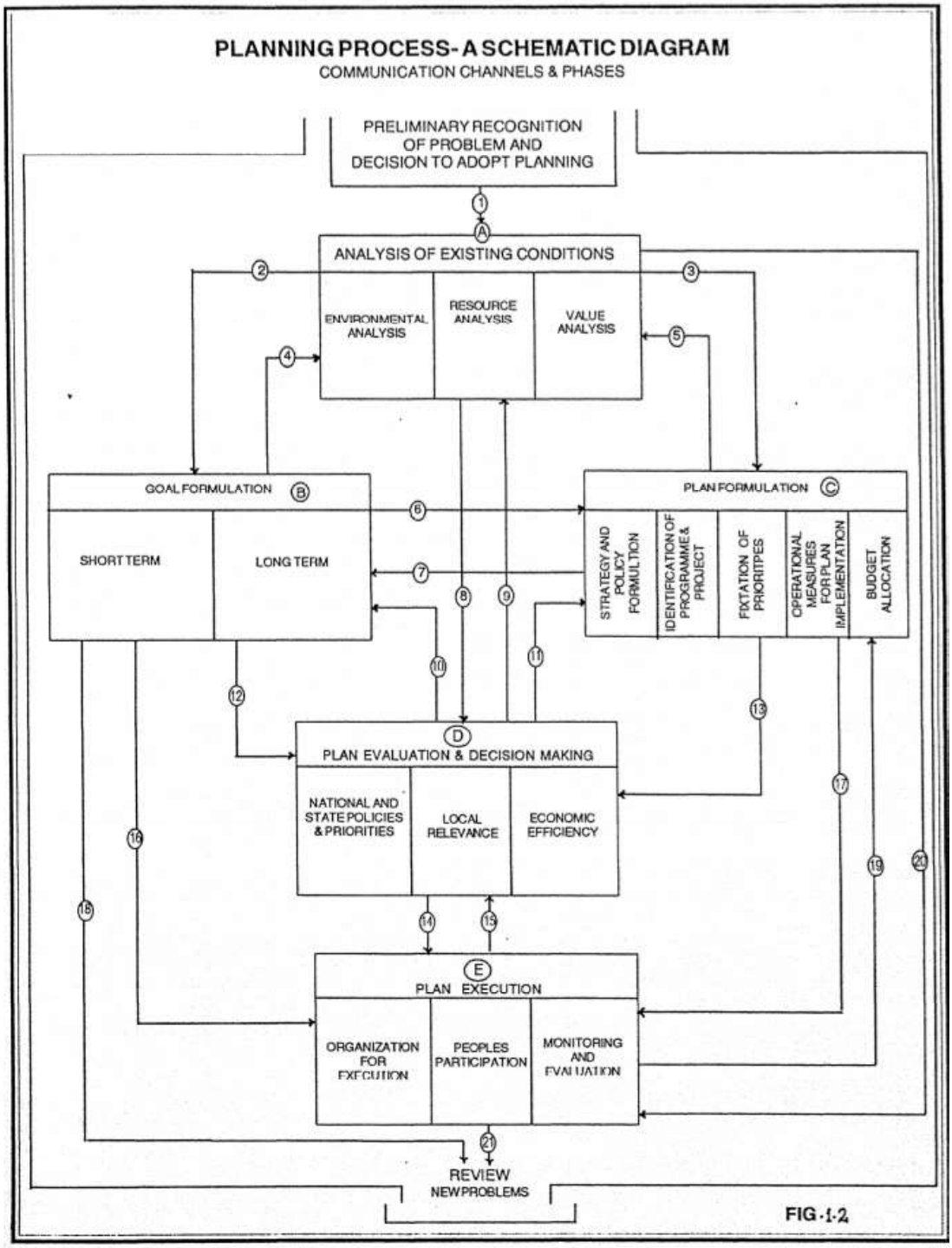

इस विधि में अगली उपविधि लक्ष्यों का निर्धारण है। पर्यावरणीय संसाधनों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि लक्ष्य निर्धारण मूल्य विश्लेषण पर आधारित है। आवश्यक रूप से यह योजना अवधि में जिस चीज को प्राप्त करना है , उसका विभाजन मात्र है। लक्ष्यों का निर्धारण अल्प एवं दीर्घ अवधि के लिए किया जाता है ताकि ज्वलंत क्षेत्रीय समस्याओं को प्रकाश में लाया जा सके और समन्वित विकास की स्पष्ट रूपरेखा तैयार की जा सके। लक्ष्य निर्धारण स्थानीय लोगों की आकांक्षाओं एवं उपलब्ध

संसाधनों की सम्भाव्यताओं पर आधारित होना चाहिए क्योंकि एक बार लक्ष्य एवं विषय वस्तु का निर्धारण हो जाने पर आने वाले समय में निर्णय एवं उपनिर्णय लिए जा सकेंगे। इस कारण लक्ष्य निर्धारण की प्रक्रिया में स्थानीय लोगों की सहभागिता आवश्यक है। इस प्रक्रिया की अगली उपविधि योजना निर्धारण की है जो कि समन्वयन एवं समाकलन के महत्वपूर्ण साधन का कार्य करती है। यह सम्भावित कार्यविधि का भी निर्धारण करती है ताकि लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को भली भांति प्राप्त किया जा सके। योजना निर्धारण में निम्नांकित बातें शामिल है (i) संयोजना एवं नीति निर्धारण ; (ii) कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं की पहचान (iii) वरीयताओं का निर्धारण ; (iv) योजना क्रियान्वयन हेतु संक्रियात्मक मापदण्ड ; तथा (v) वित्त व्यवस्था।

अगली उपविधि योजना मूल्यांकन एवं निर्णय लेने की है। चूंकि वैकल्पिक सुझावों की संख्या अधिक हो सकती है , इसलिए कार्यक्रम सर्वोत्तम गतिविधि के निर्धारण हेतु मूल्यांकन आवश्यक है। मूल्यांकन एवं निर्णय लेने का कार्य यद्यपि अत्यन्त कष्टप्रद होता है लेकिन योजनाओं के सफल क्रियान्वयन हेतु अत्यन्त उपयोगी है। इसमें समाज के विभिन्न क्षेत्रों एवं विभिन्न वर्गों के लोगों की आवश्यकताओं एवं अभिलाषाओं का भी लेखा - जोखा रखना पड़ता है तथा ऐसी स्थितियों पर भी नजर रखनी पड़ती है , जो भविष्य में उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए इस कार्य में लगे हुए लोगों के लिए यह आवश्यक है कि वे कार्य करने में दक्ष एवं ईमानदार हों।

मूल्यांकन एवं निर्णय लेने के कार्य में निम्नांकित बातें सम्मिलित है - (i) राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय वरीयताएं : (ii) स्थानीय प्रासंगिकता ; तथा , (iii) आर्थिक दक्षता।

इस विधि में अंतिम उपविधि योजना निष्पादन की विधि है। यह एक ऐसा कार्य है जो निर्धारित नीतियों को प्रभावशाली ढंग से लागू करता है। यह इस योजना की स्थाई विशेषता है। इसके लिए सूक्ष्म एवं अविरल सर्वेक्षण की आवश्यकता है।

योजना क्रियान्वयन की सफलता निम्नांकित बातों पर निर्भर करती है (i) निष्दापन हेतु संगठन ; (ii) जनसहभागिता ; तथा (iii) संचालन एवं मूल्यांकन।

उपरोक्त पांचों उपविधियां आपस में एक - दूसरे से सम्बन्धित हैं तथा मार्गदर्शन एवं निर्देशों की विभिन्न प्रक्रियाओं से भी सम्बद्ध हैं। साथ ही दूसरी ओर सूचनाओं एवं शंकाओं से भी सम्बद्ध हैं। मॉडल चित्र संख्या : सम्पूर्ण योजना की सफलता संचार श्रृंखलाओं की क्षमता एवं प्रभाविता पर आधारित है। नियोजन प्रक्रिया का अंत उसके क्रियान्वयन एवं पुनर्निरीक्षण से ही नहीं होता है। जब योजना का एक चक्र पूरा हो जाए तो इस बात का विश्लेषण करके , कि इच्छित लक्ष्य की पूर्ति हुई है

या नहीं , योजना का दूसरा चक्र प्रारम्भ किया जाना चाहिए। अगर ऐसा पाया जाता है कि योजना से वांछित परिणाम प्राप्त हो गए हैं , तो नियोजन दूसरी समस्याओं के समाधान की दिशा में गतिमान होगा और यदि परिवर्तन एवं परिणाम असंतोषजनक है तो सम्पूर्ण प्रक्रिया का वही चक्र फिर से संचालित होगा । इस प्रकार नियोजन प्रक्रिया - कार्यक्रमों की एक ऐसी श्रृंखला है जिसमें क्षेत्रीय सर्वेक्षण एवं विश्लेषण के सम्मिलित होने के साथ - साथ आवश्यकताओं का परीक्षण भी किया जाता है। इतना ही नहीं , इसके अन्तर्गत विकास की सम्भावनाओं का पता लगाया जाता है , उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है और वैकल्पिक व्यूह रचना का प्रयोग एवं परीक्षण किया जाता है। लेकिन यह इस प्रक्रिया का अंत नहीं है जैसा कि समकालीन अध्ययन से परिलक्षित है कि योजना , निर्माण के सम्बन्ध में अनन्त है। यह अविरल चलने वाली प्रक्रिया का एक अंग है जिसका कि समय - समय पर क्षेत्रीय स्थितियों अथवा समस्याओं के अनुसार पुनर्निरीक्षण होता रहे एवं तदनुसार उसमें सुधार भी होता रहे। नियोजन प्रक्रिया बहुचक्रीय है। प्रथम के बाद दूसरा चक्र स्थान ग्रहण कर लेता है और दूसरेकेबाद तीसरा। इस प्रकार यह प्रक्रिया निरंतर जारी रहती है। पूर्ववर्ती चक्रों के परिणामों एवं अनुभवों से एक नई दिशा प्राप्त होती है तथा उसके अनुसार अगले चक्र में सुधार कर लिया जाता है। इस सम्बन्ध में पोपर का विचार है कि प्रत्येक सामाजिक कार्य समस्या के निदान हेतु एक अविरल प्रक्रिया है। इसका प्रारम्भ एवं अंत समस्या से ही होता है। इस प्रकार नियोजन प्रक्रिया बहुचक्रीय है फिर भी समस्या का स्वरूप विभिन्न स्थितियों एवं चक्रों के अनुसार अलग - अलग होता है।

पंचवर्षीय योजनाओं में लघु स्तरीय नियोजन (Micro - level Planning in Five Year Plands) -

यद्यपि लघु स्तरीय नियोजन की विचारधारा का प्रतिपादन प्रथम पंचवर्षीय योजना के निर्माण के समय पर ही किया गया था और जिला स्तरीय नियोजन का कार्य द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल से प्रारम्भ हुआ और तब से आज तक जारी है , किन्तु हाल ही में इस लघुस्तरीय नियोजन की अवधारणाओं , प्रारूप एवं गुणात्मकता के क्षेत्र में कुछ रुकावटें पैदा हो गई हैं (मिश्रा एवं सुन्दरम , 1980)। प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं में लघुस्तरीय नियोजन के सम्बन्ध में गम्भीरता से ध्यान नहीं दिया गया , मात्र समय - समय पर योजना की चर्चा भर कर ली गई और अत्यन्त लघु स्तर पर सहभागिता सुनिश्चित की गई (योजना आयोग 1957)। हालांकि सामुदायिक विकास योजना द्वितीय पंचवर्षीय योजना से लागू की गई। सामुदायिक विकास योजना का महत्वपूर्ण योगदान यह

रहा कि इसने एक संस्था को जन्म दिया जैसे विकासखण्ड कार्यालयों की स्थापना। इनका उद्देश्य अत्यन्त लघु स्तर पर विभिन्न योजनाओं को लागू करना था। दूसरी पंचवर्षीय योजना में जिला स्तरीय नियोजन का उद्देश्य स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना तथा योजना के प्रति लोगों में उत्साह पैदा करना था। इतना ही नहीं , इसका उद्देश्य स्थानीय लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करना एवं स्थानीय संसाधनों का अधिकाधिक उपयोग एवं इन्हें गतिमान वनाना भी था किन्तु इसके लिए कोई विधितंत्रीय ढांचा विकसित नहीं किया गया (योजना आयोग , 1956)। तीसरी पंचवर्षीय योजना में क्षेत्रीय विकास को अत्यधिक महत्व दिया गया। इस काल में विशेष रूप से नगरीय एवं प्रादेशिक विकास के लिए वृहद योजना तैयार करके क्षेत्रीय विकास एवं उसकी समस्याओं पर गहन चिन्तन किया गया (सिंह , 1982)। इस स्थानीय योजना को विकसित करने एवं प्रकाश में लाने का श्रेय प्रो . गाडगिल (1966) को जाता है।

भारतीय नियोजन अवधि में पहली बार चतुर्थ पंचवर्षीय योजना काल में (योजना आयोग 1969 - 74) निचली सतह से क्षेत्रीय योजना एवं विकास की शुरुआत की गई। यह महसूस किया गया कि केन्द्रीकत राष्ट्रीय स्तर की योजना स्थानीय संसाधनों एवं आवश्यकताओं को पहचाननं में असफल रही है। इसलिए लघु - स्तरीय नियोजन की विचारधारा , जिसमें जनपद को नियोजन की इकाई का आधार माना गया , प्रारम्भ की गई।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाकाल में , योजना आयोग द्वारा जिला योजना को विकसित करने का अथक प्रयास किया गया तथा जिला स्तरीय नियोजन हेतु मार्गदर्शन प्रदान किए। इसमें पहली बार कुछ स्पष्ट क्षेत्रीय नीतियां निर्धारित की गई एवं संतुलित क्षेत्रीय विकास के लिए ठोस कदम उठाए गए। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के दौरान अतिविशिष्ट क्षेत्रीय , वर्गीय एवं प्रादेशिक योजनाएं प्रारम्भ की गई . जो निम्नांकित हैं : (1) लघु कृषक विकास अधिष्ठान ; (2) सीमांत कृषक एवं कृषि मजदूर विकास अधिष्ठान ; (3) न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (4) पहाड़ी क्षेत्रों के विकास की योजना ; (5) जनजातीय क्षेत्रों के विकास की योजना ; (6) सूखा प्रभावित क्षेत्र के लिए योजना ; तथा 17) शुष्क कृषि भूमि के समन्वित विकास के लिए प्रमुख योजनाएं।

पंचम पंचवर्षीय योजना काल में (योजना आयोग , 1974 - 79) ग्रामीण इलाकों के समन्वित एवं संतुलित विकास के लिए विकासखण्ड स्तर पर लघु - स्तरीय नियोजन पर बल दिया गया। इसमें जिले को विकासखण्ड एवं राज्य के बीच की कड़ी स्वीकारा गया। श्रीमान धर , जो कि तत्कालीन योजना मंत्री थे , निचले स्तर पर योजना की आवश्यकता एवं महत्व के विषय में तर्क दिया। इन्होंने

चेतावनी देते हुए इस तथ्य पर बल दिया कि जब तक नियोजन निचले स्तर पर लागू नहीं किया जाएगा तब तक पांचवीं पंचवर्षीय योजना का मध्यावधि मूल्यांकन भी विकास योजना की दुर्वलता को प्रकट करेगा। इन्होंने इस तथ्य पर पुनः प्रकाश डाला कि नियोजन प्रक्रिया सबसे पहले जनपद स्तर पर शुरू हो तथा फिर उससे छोटे स्तर यथा - गांव समूहों , विकासखण्ड तथा तहसील तक पहुंचे। पूर्ववर्ती योजनाओं का मुख्य दोष यह था कि निचले स्तर के लोगों की सहभागिता एवं उनके विकास पर ध्यान नहीं दिया गया था (धर , 1972)। विशिष्ट क्षेत्रीय योजनाएं , जो कि चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाकाल में प्रारम्भ की गई , पांचवीं पंचवर्षीय योजना में भी लागू रहीं। नियंत्रण क्षेत्र विकास योजना , मरुभूमि विकास योजना एवं सम्पूर्ण ग्राम विकास योजना को भी पांचवीं पंचवर्षीय योजना में प्रारम्भ किया गया। समन्वित क्षेत्रीय विकास की अवधारणा , जो कि चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाकाल में अस्तित्व में आयी , पांचवीं पंचवर्षीय योजना में इसका महत्व और भी अधिक बढ़ गया। यही कारण है कि समन्वित क्षेत्र विकास के लिए अनेक संयोजनाएं - जैसे कि लक्ष्य वर्ग उपागम , लक्ष्य समूह उपागम , विकास केन्द्र उपागम , अविकसित क्षेत्र विकास उपागम , पूर्ण रोजगार यक्त क्षेत्रीय योजनाएं , सर्वांगीण विकास हेतु प्रकाश में आई।

छठी पंचवर्षीय योजना (योजना आयोग , 1978 - 83) में अविस्थिति विशिष्ट नियोजन की स्थापना पर विशेष बल दिया गया , जिसका उद्देश्य उत्पादन में वृद्धि करना , सामाजिक न्याय एवं ग्रामीण लोगों को रोजगार के सुअवसर प्रदान करना था। इसके अतिरिक्त विकासखण्ड स्तर पर समन्वित ग्रामीण विकास योजना पर जोर देते हुए इसमें लघु स्तरीय नियोजन पर विशेष बल दिया गया।

सातवीं पंचवर्षीय योजना में (योजना आयोग , 1985 - 90) लघु - स्तरीय योजना पर विशेष बल प्रदान किया गया। हालांकि यहां इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि गरीबी उन्मूलन योजनाएं , राष्ट्रीय ग्रामीण योजना , समन्वित ग्रामीण विकास योजना एवं ग्रामीण भूमिहीन रोजगार योजना आदि विविध योजनाएं अपने आप में गरीबी एवं वेरोजगारी को दूर करने में अपेक्षानुसार सक्षम सिद्ध नहीं हो सकीं। आगे यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है कि सभी लाभदायक योजनाओं को समन्वित रूप प्रदान किया जाए , विशेषतः विभिन्न वर्गीय तथा क्षेत्रीय विकास योजनाओं को , ताकि जिला / विकासखण्ड स्तर पर उपलब्ध संसाधनों का उपयुक्त मात्रा में दोहन करके और उनकी सम्भाव्यताओं का अन्वेषण कर लोगों की आधारभूत आवश्यकताएं पूरी की जा सकें। इस योजना में यह महसूस किया गया कि बिना संरचनात्मक परिवर्तनों से सम्बद्ध सामाजिक परिवर्तन (शैक्षिक विकास , सझवझ या समझदारी में वृद्धि , दृष्टिकोण में परिवर्तन , उद्देश्य एवं संस्कारों में परिवर्तन

आदि) के गरीबों की आर्थिक दशा में सुधार नहीं लाया जा सकता। यही कारण है कि इस योजना काल में निचले स्तर पर चयनित संस्थाओं द्वारा गरीब लोगों की सहभागिता तथा विकास प्रक्रिया में उनके अपने निजी संगठनों के माध्यम से कार्य सम्पन्न कराने पर विशेष जोर दिया गया है। हालांकि समीक्षात्मक अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि योजना आयोग एवं सरकार ने लघ - स्तरीय प्रादेशिक नियोजन के विकास पर कितना भी प्रयास क्यों न किया हो , लेकिन व्यावहारिक दृष्टिकोण से लघु - स्तरीय नियोजन को अभी भी अपना पैर जमाने में समय लगेगा।

आठवीं पंचवर्षीय योजना काल में (योजना आयोग , 1990 - 95) में समाज के सभी वर्गों के उत्थान का ध्यान रखते हुए उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप छोटी - बड़ी योजनाएं तैयार करने , राज्यों / प्रदेशों के अन्तर्गत क्षेत्रीय असंतुलन को समाप्त करने तथा नियोजन को अधिक कारगर बनाने हेतु इस प्रक्रिया में जनता को शामिल करके उनके सुझाव आमंत्रित कर उन पर विचार करने पर बल दिया गया है। इस योजना की विकास दर 6 प्रतिशत के लक्ष्य पर टिकी है। वस्तुतः नियोजन हेतु प्रादेशिक सक्रियता को विकसित करना आवश्यक है। इस दिशा में अधिकारियों , राजनीतिज्ञों , नियोजकों एवं अन्य आर्थिक प्रतिनिधियों द्वारा क्षमतापूर्ण प्रदेशों की पहचान कर जनता के श्रम एवं कार्यक्षमता पर आधारित उद्योगों एवं आर्थिक क्रियाकलापों को स्थापित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। नियोजन हेतु एक प्रादेशिक प्रशासन की भी आवश्यकता है जो कि सूक्ष्म स्तर के सर्वांगीण विकास में प्रमुख भूमिका निभाने में समर्थ हो।

भारत में लघु - स्तरीय नियोजन (Micro - Level Planning in India)

प्रशासनिक एवं शैक्षणिक दोनों ही दृष्टियों से भारत में लघु - स्तरीय नियोजन का विचार पूर्णतः नवीन है। देश की समस्याओं के समाधान हेतु प्रादेशिक नियोजन के सामाजिक संदर्भो के अलावा यह एक प्रकार से 1960 के दशक के पूर्व अस्तित्वहीन था। यद्यपि चटर्जी (1940) एवं राब (1949) ने कुछ प्रादेशिक अध्ययनों एवं प्रादेशिक सर्वेक्षणों को भी प्रादेशिक नियोजन के परिप्रेक्ष्य में आयोजित किया गया लेकिन यह कार्य मात्र मध्यम एवं वृहद स्तरों पर ही हो सका। वैसे प्रादेशिक नियोजन की अवधारणा एवं उसके विविध पक्षों के अध्ययन की दिशा के सम्बन्ध में अनेक शोधार्थियों का ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने इस विषय पर महत्वपूर्ण अध्ययन भी किए लेकिन लघु - स्तरीय नियोजन को 1960 के दशक के दौरान कोई उचित स्थान नहीं मिल पाया। प्रादेशिक नियोजन के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालते हुए प्रकाशाराव (1949) ने प्रादेशिक नियोजन पर साहित्य

उपलब्ध कराकर इस दिशा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रादेशिक नियोजन के लिए एक सैद्धांतिक ढांचा के सम्बन्ध में अपनी संक्षिप्त समालोचना आख्या में इन्होंने नियोजन सिद्धांतों के लिए विभिन्न अवधारणाओं की प्रासंगिकता का परीक्षण किया। राव (1949) ने मुजफ्फरनगर जनपद के एक विशिष्ट अध्ययन में जिला स्तर पर लघु - स्तरीय नियोजन के महत्व को प्रतिपादित करने का बहुमूल्य प्रयास किया है।

पंडित (1968) ने लघु प्रदेशीय नियोजन एवं वर्धा जनपद के लिए अवस्थापनाओं की योजना के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन्होंने लघु - स्तरीय प्रदेशों के लिए विकास नियोजन की वैकल्पिक विधियों की संगठनात्मक तकनीकों के कलमबद्ध महत्व का भी परीक्षण किया।

इस प्रकार 1960 के दशक में राष्ट्रीय विकास हेतु प्रादेशिक नियोजन की आवश्यकता पर मुख्य रूप से ध्यान केन्द्रित किया गया। लेकिन वे वृहद स्तर तथा निचले स्तरों के प्रादेशिक नियोजन हेतु कोई सार्थक अवधारणिक या विधितांत्रिक आधार प्रस्तुत करने में असफल रहे।

1970 के दशक में अध्ययन (Studies During Seventies) -

सातवीं दशाब्दी के दौरान स्थानिक विकास एवं नियोजन के क्षेत्र में वैज्ञानिक विधियों पर आधारित अनेकों प्रशंसनीय अध्ययन आयोजित किए गए जो कि न केवल विषय सम्वन्धी ज्ञान की दृष्टि से धनी हैं बल्कि सार्थक अवधारणिक एवं विधितांत्रिक आधार भी प्रदान करते हैं। ये अध्ययन लघु - स्तरीय नियोजन की बहुत अच्छी तरह से व्याख्या करते हैं।